mediaauditornews@gmail.com mediaauditor Epaperdainikmediaauditor.in mediaauditor वर्ष-29 अंक-225 पृष्ठ-8 मूल्य-3 रूपये

रीवा

17 अगस्त 2025 रविवार

दैनिक मीडिया ऑडीटर

रीवा, सतना एवं मनेन्द्रगाढ़ से एक साथ प्रकाशित

मोदी ने लाल-किले से पहली बार आरएसएस की तारीफ की

कांग्रेस बोली- उन्हें भागवत की कृपा चाहिए, ताकि 75 की उम्र के बाद भी पीएम रहें

नई दिल्ली,एजेंसी। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लाल किले के प्राचीर से पहली बार राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का जिक्र किया। उन्होंने 79वें स्वतंत्रता दिवस के संबोधन में कहा- आज गर्व के साथ मैं इस बात का जिक्र करना चाहता हूं कि 100 साल पहले एक संगठन आरएसएस का जन्म हुआ। 100 साल की राष्ट्रसेवा गौरवपूर्ण है। आरएसएस ने व्यक्ति निर्माण से राष्ट्र निर्माण के संकल्प को लेकर 100 साल मां भारती के कल्याण के लिए अपना जीवन समर्पित किया। सेवा, समर्पण, संगठन और अप्रतिम अनुशासन जिसकी पहचान रही है, ऐसा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दुनिया का सबसे बड़ा NGO है। इस पर कांग्रेस नेता जयराम रमेश ने कहा- प्रधानमंत्री ने अपने भाषण में आरएसएस का जिक्र मोहन भागवत को खुश करने के लिए

किया, क्योंकि मोदी अब पूरी तरह उनके भरोसे हैं। सितंबर के बाद जब वे 75 साल के हो जाएंगे, तो पद पर बने रहे के लिए मोहन भागवत की मदद पर निर्भर हैं।

भाजपा ने 75 साल की उम्र पर कई नेता रिटायर किए : पीएम मोदी 17 सितंबर को 75 साल के हो जाएंगे। विपक्ष के कई नेता 2024 के चुनाव से पहले और बाद में उनके 75 की उम्र पूरी करते ही रिटायर होने के चर्चा कर चुके हैं। मई, 2024 में अरविंद केजरीवाल ने कहा था कि अगर भाजपा लोकसभा चुनाव जीत गई तो मोदी अगले साल तक ही प्रधानमंत्री रहेंगे। पीएम मोदी ने खुद यह नियम (75 साल की उम्र में रिटायरमेंट) बनाया है। दरअसल 2014 के लोकसभा चुनाव के बाद भाजपा में 75 साल की उम्र से ज्यादा के नेताओं को रिटायर करने का ट्रेंड शुरू। पहली बार प्रधानमंत्री बने नरेंद्र मोदी ने अपनी कैबिनेट में इससे कम उम्र के नेताओं को ही जगह दी थी।

पीएम बोले- जरूरी सामान पर टैक्स घटाएंगे, यह दिवाली गिफ्ट

जीएसटी स्लैब 4 से घटाकर 2 करने का प्रस्ताव; 3.5 करोड़ रोजगार के लिए नई योजना

नई दिल्ली, एजेंसी। स्वतंत्रता दिवस के मौके पर प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लाल किले से 2 घोषणाएं की हैं। उन्होंने प्रधानमंत्री विकसित भारत रोजगार योजना लॉन्च की। साथ ही दिवाली तक टैक्स कम करने वाली GST रिफॉर्म्स स्कीम लाने की बात कही। पीएम मोदी ने कहा- आज मैं आपके लिए खुशखबरी लेकर आया हूं। 15 अगस्त के दिन मेरे देश के युवाओं के लिए 1 लाख करोड़ रुपए की प्रधानमंत्री विकसित भारत रोजगार योजना शुरू कर रहे हैं। इससे साढ़े 3 करोड़ नौजवानों को रोजगार मिलेगा। मोदी ने संबोधन में कहा- इस साल दिवाली में बड़ा तोहफा मिलने वाला है। GST को आए 8 साल हो चुके हैं। हमने उसका रीव्यू किया। उसका रिफॉर्म कर टैक्सेशन को सरल किया है। हम नेक्स्ट जेनरेशन GST रिफॉर्म्स लेकर आ रहे हैं। सामान्य लोगों के लिए टैक्स कम कर देंगे, रोजमर्रा की चीजें सस्ती हो जाएगी, लोगों को बहुत फायदा होगा। 12% GST वाले आइटम 5% वाले स्लैब में आ सकते हैं एक महीने पहले खबर आई थी कि टूथपेस्ट, बर्तन, कपड़े, जूते जैसे आम आदमी के इस्तेमाल में आने वाले आइटम्स की कीमतों में कमी आ सकती है, क्योंकि सरकार मिडिल-क्लास और लोअर-इनकम फैमिली को GST में कटौती कर राहत देने की तैयारी कर रही है। रिपोर्ट्स के मुताबिक, सरकार 12% GST स्लैब को पूरी तरह से खत्म करने या वर्तमान में 12% टैक्स वाले आइटम्स को 5% स्लैब में ला सकती है। इस रीस्ट्रक्चरिंग यानी बदलाव में मिडिल-क्लास और आर्थिक रूप से कमजोर लोगों के इस्तेमाल में आने वाले आइटम्स शामिल होंगे। अभी GST में 5%, 12%, 18% और 28% के चार स्लैब हैं।

ऑस्ट्रेलिया में खालिस्तानी समर्थकों ने तिरंगा फहराने से रोका

कैनेबरा, एजेंसी। ऑस्ट्रेलिया के मेलबर्न में भारतीय वाणिज्य दूतावास के बाहर स्वतंत्रता दिवस मना रहे भारतीय नागरिकों को खालिस्तानी समर्थकों ने रोकने की कोशिश की और हंगामा किया। द ऑस्ट्रेलिया टुडे के मुताबिक, भारतीय नागरिक शांतिपूर्वक स्वतंत्रता दिवस मना रहे थे, तभी कुछ खालिस्तानी समर्थकों ने झंडे लहराकर और परेशान करके माहौल खराब किया।

इसका वीडियो भी वायरल हो रहा है। इसमें भारतीय समुदाय देशभक्ति गीत गाकर तिरंगा झंडा फहराते दिख रहे हैं। तभी कुछ खालिस्तानी उन्हें ऐसा करने से रोकने की कोशिश करते है। हालांकि, समारोह में भारत माता की जय और वंदे मातम के नारों के बीच तिरंगा फहराया गया।

बेंगलुरु में विस्फोट, एक लड़के की मौत और 10 से ज्यादा घायल

बैंगलोर,एजेंसी। बेंगलुरु में स्वतंत्रता दिवस के दिन अदुगोडी थाना क्षेत्र स्थित एक घर में विस्फोट से एक बच्चे की मौत हो गई और 10 से ज्यादा लोग घायल हो गए। सभी घायलों को अस्पताल में भर्ती कराया गया है। वहीं एक महिला की हालत नाजुक बताई जा रही है। विस्फोट इतना जबरदस्त था कि आसपास के 13 मकान भी क्षतिग्रस्त हो गए। पुलिस मामले की जांच कर रही है कि। घटना की जानकारी मिलते ही मुख्यमंत्री सिद्धारमैया ने घटनास्थल का दौरा किया। इस दौरान उन्होंने घोषणा की कि मृतक लड़के के परिवार को 5 लाख, घायलों को एक लाख का मुआवजा और इलाज की सुविधा उपलब्ध कराएगी। शहर के चित्रण्यानपाल्या स्थित श्रीराम कॉलोनी के एक घर में शुक्रवार को हुए विस्फोट में मुबारक (8 साल) की मौत हो गई। इसमें 10 से अधिक लोग घायल हो गए। सभी घायलों को संजय गांधी और विक्टोरिया अस्पताल में भर्ती कराया गया है।

अटारी बॉर्डर पर आजादी दिवस की धूम

अमृतसर के अटारी बॉर्डर पर स्वतंत्रता दिवस पर पाकिस्तान के साथ नहीं हुआ मिठाइयों का आदान-प्रदान

चंडीगढ़, एजेंसी। पंजाब प्रदेश के अमृतसर स्थित भारत-पाकिस्तान के अटारी बॉर्डर पर शुक्रवार को 79वां स्वतंत्रता दिवस मनाया जा रहा है। कमांडेंट एसएस चंदेल ने सरहद पर तिरंगा फहराया। इसके साथ ही जवानों को मिठाइयां देकर आज के दिन की शुभकामनाएं भी दीं। लेकिन आज पाकिस्तान के साथ मिठाइयों का आदान-प्रदान नही हुआ।

ऑपरेशन सिंदूर के बाद भारत-पाकिस्तान दोनों देशों ने 12 मई से रिट्रीट तो शुरू कर दी, लेकिन तब से लेकर अभी तक दोनों देशों ने अपने गेटों को नहीं खोला है। आज की रिट्रीट भी ऐसी ही होने वाली है। दोनों देश

आज भी ना तो गेट खोलेंगे और ना ही हाथ मिलाएंगे। अपनी-अपनी सीमाओं में रहते हुए दोनों देश गेटों के पार से ही झंडा उतारने की रस्म को पूरा करेंगे।

भारत-पाकिस्तान अटारी बॉर्डर पर सामान्य की भांति रिट्रीट तो होगी, लेकिन मिठाइयों का आदान-प्रदान नहीं होगा। पहले पुलवामा और अब पहलगाम हमले के बाद भारत-पाकिस्तान के रिश्तों के बीच खटास आ गई है। पुलवामा हमले के बाद तकरीबन 3 सालों तक दोनों देशों के बीच मिठाइयों का आदान प्रदान नहीं हुआ था। भारत-पाकिस्तान बंटवारे के बाद दोनों देशों में ईद, दिवाली, 15 अगस्त तथा अन्य महत्वपूर्ण अवसरों पर मिठाइयों का आदान प्रदान किया जाता है।

अब पहलगाम हमले के बाद फिर से हालात तनावपूर्ण बने हुए हैं। जिसके चलते शुक्रवार की सुबह भारतीय सैन्य अधिकारियों और पाकिस्तान रेंजरों के बीच मिठाई का आदान प्रदान नहीं किया गया। 14 अगस्त को पाकिस्तान की तरफ से भी इस तरह की कोई पहल नहीं की गई।

खड़गे बोले-भाजपा सत्ता के लिए किसी भी हद तक जाएगी

कहा- बिहार एसआईआर के नाम पर विपक्ष के वोट काटे जा रहे, जिंदा लोगों को मृत बताया

नई दिल्ली,एजेंसी। बिहार SIR के विरोध और वोटर लिस्ट में गड़बड़ी के विवाद के बीच कांग्रेस अध्यक्ष मल्लिकार्जुन खड़गे ने शुक्रवार को आरोप लगाया कि भाजपा सत्ता में बने रहने के लिए अनैतिकता की किसी भी हद तक जा सकती है। उन्होंने कहा कि देश भर के चुनावों में कई गड़बड़ी सामने आ रही हैं।

इंदिरा भवन स्थित कांग्रेस मुख्यालय में तिरंगा फहराने के बाद स्वतंत्रता दिवस के भाषण में उन्होंने आरोप लगाया कि बिहार में स्पेशल इंटेंसिव रिवीजन (SIR) के नाम पर विपक्ष के वोट काटे जा रहे हैं, जबकि जिंदा लोगों को मृत बताया जा रहा है। बिहार मतदाता सूची के पुनरीक्षण पर कांग्रेस के

विरोध का जिक्र करते हुए खड़गे ने कहा कि यह चुनाव जीतने की लड़ाई नहीं है, बल्कि भारत के लोकतंत्र और संविधान की रक्षा की लड़ाई है। दरअसल, विपक्ष लगातार बिहार SIR का विरोध कर रही है साथ ही चुनाव आयोग और भाजपा पर वोटर लिस्ट में गड़बड़ी का आरोप लगा रही है। इसी को लेकर विपक्ष संसद के मानसून सत्र में भी हंगामा कर रही है, जिससे सदन की कार्यवाही नहीं हो पा रही है। वोटर लिस्ट सार्वजनिक करने पर- चुनाव आयोग यह बताने को तैयार नहीं है कि किसके वोट काटे जा रहे हैं और किस आधार पर। यह चुनाव आयोग की कैसी निष्पक्षता है।

तमिलनाडु के मुख्यमंत्री स्टालिन ने राज्यपाल के समारोह का किया बहिष्कार

'राज्य विरोधी' रवैये का लगाया आरोप

चेन्नई, एजेंसी। तमिलनाडु के मुख्यमंत्री एमके स्टालिन ने राज्यपाल आरएन रवि के स्वतंत्रता दिवस के पारंपरिक ÷एट होम स्वागत समारोह का बहिष्कार करने का फैसला लिया है। यह राज्य सरकार और राजभवन के बीच टकराव का नया और बड़ा चरण माना जा रहा है। राज्य सरकार ने इस बहिष्कार की वजह राज्यपाल के 'तमिलनाडु विरोधी कृत्यों' को बताया है। इसके साथ ही उच्च शिक्षा मंत्री के. पोनमुदी भी दो विश्वविद्यालयों के आगामी दीक्षांत समारोह में शामिल नहीं होंगे। डीएमके इसे राज्य सरकार के अधिकारों को कमजोर करने की कोशिश के खिलाफ एक मजबूत संदेश के रूप में पेश कर रही है। इस विवाद का मुख्य कारण राज्यपाल का वह फैसला है, जिसमें उन्होंने पूर्व मुख्यमंत्री एम. करुणानिधि के सम्मान में 'कलाईगर यूनिवर्सिटी' स्थापित करने वाले विधानसभा से पारित विधेयक को राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू के पास भेज दिया।

राज्यपाल के भाषण से बढ़ा विवाद

ताजा विवाद राज्यपाल रवि के स्वतंत्रता दिवस भाषण से भड़का। उन्होंने प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और केंद्र सरकार की उपलब्धियों की जमकर तारीफ की, लेकिन राज्य सरकार या मुख्यमंत्री स्टालिन के कार्यों का कोई सकारात्मक जिक्र नहीं किया। अपने संबोधन में उन्होंने तमिलनाडु में 'गंभीर चुनौतियों' का जिक्र करते हुए गरीबों के खिलाफ शैक्षणिक और सामाजिक भेदभाव, राष्ट्रीय औसत से दोगुनी आत्महत्या दर, युवाओं में नशीले पदार्थों की बढ़ती लत और महिलाओं व बच्चों के खिलाफ अपराधों में वृद्धि जैसे मुद्दे उठाए।

किश्तवाड़ आपदा: 65 शव बरामद, 40 की पहचान,500+ लापता

सीएम अब्दुल्ला से युवक बोला- हमें बस डेड बॉडी दे दो

श्रीनगर, एजेंसी। जम्मू-कश्मीर में किश्तवाड़ जिले के चसोटी गांव में सर्च-रेस्क्यू का आज तीसरा दिन है। 14 अगस्त की दोपहर 12.25 बजे यहां बादल फटा था। इसके कारण मलबे में दबने से अब तक 65 लोगों की मौत हो चुकी है। अब तक 34 शवों की पहचान की जा चुकी है। 500 से ज्यादा लोग रेस्क्यू किए गए हैं, जबकि 200 लोग अब भी लापता हैं।

घायलों की संख्या 180 है, जिनमें से 40 की हालत गंभीर है। सभी घायलों को किश्तवाड़-जम्मू के अस्पतालों में भर्ती किया गया है। 75 लोगों की डिटेल उनके परिजन ने प्रशासन को दी है। रेस्क्यू में NDRF की 3 टीमें, सेना

(300+ जवान), व्हाइट नाइट कोर मेडिकल टीम, पुलिस, SDRF और अन्य एजेंसियां रेस्क्यू में जुटी हैं। जम्मू-कश्मीर के सीएम उमर अब्दुल्ला आज चसोटी पहुंचे। उन्होंने आपदा के पीड़ितों से भी मुलाकात की। हर संभव मदद का आश्वासन दिया। इस पर एक शख्स ने उनसे कहा- हम कुछ नहीं चाहिए, आप सब अपने घर ले जाओ, हम सिर्फ डेडबॉडी दे दो। मेरी मां-मौसी लापता हैं।

युवक ने आरोप लगाया कि यहां पर 20 जेसीबी आई हैं, हम कल से देख रहे हैं कि सिर्फ 2 ही जेसीबी काम कर रही हैं।

पाकिस्तान में बाढ़ से 48 घंटों में 320 से ज्यादा मौतें, घर-सड़के तबाह; 2 हजार बचावकर्मी तैनात हुए

इस्लामाबाद, एजेंसी। पाकिस्तान में बाढ़ से पिछले 48 घंटों में 321 लोगों की मौत हो गई है। अधिकारियों के मुताबिक सबसे ज्यादा मौतें खैबर पख्तूनख्वा प्रांत में हुई, जहां नदियों के उफान और घरों के ढहने से 307 लोगों की मौत हो गई। तेज बारिश के कारण शुक्रवार को पाकिस्तान के विभिन्न जिलों में अचानक बाढ़ आ गई थी, जिसमें 200 से अधिक लोग मारे गए थे। अधिकारियों ने बताया कि नौ जिलों में लगभग 2 हजार बचावकर्मी रेस्क्यू में लगे हुए हैं, लेकिन पहुंच अभी भी काफी सीमित है।

मुंबई में बारिश का रेड अलर्ट,लैंडस्लाइड में 2 की मौत

घरों, रेलवे ट्रैक पर पानी भरा; बिहार के भागलपुर में बाढ़ से 6 लाख लोग प्रभावित

मुंबई/पटना/लखनऊ,एजेंसी। मुंबई में शुक्रवार रात से तेज बारिश हो रही है। विक्रोली इलाके में रात 11 बजे से सुबह 6 बजे तक 213एमएम बारिश हुई है। यहां जनकल्याण सोसाइटी के वर्षा नगर इलाके में विक्रोली पार्क साइट में लैंडस्लाइड हुई। घटना में 2 लोगों की मौत हुई है, 2 घायल हैं। आज मुंबई समेत राज्य के 6 जिलों में तेज बारिश का रेड अलर्ट है। हार्बर लाइन पर रेलवे ट्रैक पानी में डूबा है। सायन, वाशी, नवी मुंबई समेत कई इलाकों में 2-4 फीट तक पानी भर गया है। प्रशासन ने लोगों से अपील की है कि जरूरत पड़ने पर ही घरों से बाहर निकलें। दिल्ली में हुमायूं का मकबरा कैंपस में शुक्रवार शाम 4 बजे एक कमरे की छत गिर गई थी। 12 लोगों को रेस्क्यू किया गया था। इनमें से 6 की मौत हो गई, इनमें 3 पुरुष-3 महिलाएं शामिल हैं। वहीं, दिल्ली में यमुना का जलस्तर 204.65 मीटर पहुंच गया, जो खतरे के निशान से ऊपर है। बिहार में कोसी, सीमांचल और पूर्वी बिहार के जिलों में बाढ़ की स्थिति है। भागलपुर में 6 लाख लोग इससे प्रभावित हैं। गंगा-कोसी का जलस्तर बढ़ने से फरक्का बैराज के सभी 109 गेट खोले गए। राज्य में इस सीजन में अब तक 647mm बारिश होनी चाहिए थी, लेकिन 492 मिलीमीटर बारिश ही हुई है।

स्वतंत्रता दिवस पर भगवंत मान का ऐलान, पंजाब में अब एक किलो हेरोइन पकड़ने पर मिलेगा 1.20 लाख रुपये का इनाम

स्वतंत्रता दिवस पर मुख्यमंत्री भगवंत मान का ऐलान, पंजाब में होगी 1600 पुलिस कर्मियों की भर्ती

चंडीगढ़,एजेंसी। पंजाब के मुख्यमंत्री भगवंत मान ने स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर नशे के खिलाफ लड़ाई तेज करने का ऐलान करते हुए कहा कि नशा के खिलाफ लड़ाई के तहत हम नई रिवॉर्ड पॉलिसी लागू कर रहे हैं। अब 01 किलोग्राम हेरोइन पकड़ने वाले पुलिस कर्मी को 1.20 लाख रुपये पुरस्कार के रूप में दिए जाएंगे। अब एनडीपीएस मामलों की जांच हेड कॉन्स्टेबल को सौंपी जा रही है। 1,600 नए पुलिस कर्मियों की भर्ती की जा रही है। हालांकि, पहले इन पदों पर तैनात मुलाजिमों को प्रमोशन दिया जाएगा।पंजाब सरकार का स्वतंत्रता दिवस पर राज्य स्तरीय कार्यक्रम फरीदकोट में हुआ। यहां मुख्यमंत्री भगवंत मान ने नेहरू स्टेडियम में ध्वजारोहण किया। इसके बाद उन्होंने परेड का निरीक्षण किया और भाषण दिया। मुख्यमंत्री ने कहा कि देश की आजादी में 80

प्रतिशत कुर्बानियां पंजाब ने दी हैं। यहां लाशों से भरी रेलगाड़ियां पहुंची थीं। उन्होंने कहा कि यह आज़ादी हमें बहुत महंगी पड़ी है। अब भाईचारा बनाए रखने के लिए मैं अंतिम सांस तक मेहनत करूंगा। इस दौरान उन्होंने स्वतंत्रता सेनानियों के परिवारों और कारगिल युद्ध के हीरोज को सम्मानित किया। इस कार्यक्रम में राजस्थान आर्म्ड पुलिस फोर्स की टुकड़ी भी शामिल हुई। उन्होंने विभिन्न क्षेत्रों में उत्कृष्ट कार्य करने वाली 26 हस्तियों और पुलिस मुलाजिमों को सम्मानित किया।

पंजाब नंबर वन होगा, तभी देश नंबर वन बनेगा- मुख्यमंत्रीने कहा कि पंजाब को नंबर वन बनाए बिना देश नंबर वन नहीं बन सकता। हर कुर्बानी के लिए पंजाबी तैयार हैं, चाहें अनाज पैदा करना हो, बॉर्डर पर मोर्चा संभालना हो या खेलों में आगे बढना हो। पंजाब की चमक फीकी नहीं पडने देनी है। सभी को इसकी तरक्की के लिए मिलकर काम करना होगा।

मुख्यमंत्री ने कहा कि नशा तस्करी से जुड़े एनडीपीएस मामलों में अब नई रिवॉर्ड पॉलिसी लागू की जा रही है। इसके तहत एक किलोग्राम से ज्यादा हेरोइन पकडने वाले पुलिस कर्मियों को 1.20 लाख रुपये का इनाम दिया जाएगा। इनकी जांच अब हेड कॉन्स्टेबल को सौंपी जा रही है, जो पहले एएसआई के पास होती थी। उन्होंने कहा कि पुलिस महकमे में 1600 नई पोस्ट भरी जाएंगी। इनमें 150 इंस्पेक्टर, 450 सब-इंस्पेक्टर और 1000 कॉन्स्टेबल के पद प्रमोशन से भरे जाएंगे। इसके बाद नई भर्ती की जाएगी। उन्होंने कहा कि 3,068 स्कूलों में युद्ध स्तर पर नशों के विरुद्ध सिलेबस शुरू किया गया है। आठ लाख युवाओं को यह सिलेबस पढ़ाया जाएगा। इसमें नशे से कैसे बचना है, इस बारे में ट्रेनिंग दी जाएगी। हम चाहते हैं कि जो लोग नशे में लगे हैं, उन्हें सुधारा जाए और नई पीढ़ी को नशे से बचाया जाए।

प्रधानमंत्री मोदी रविवार को दिल्ली में करेंगे 11 हजार करोड़ रुपये की हाईवे परियोजनाओं का लोकार्पण

नई दिल्ली, एजेंसी। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी रविवार दोपहर 12:30 बजे दिल्ली के रोहिणी में आयोजित एक भव्य समारोह में दो महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय राजमार्ग परियोजनाओं का लोकार्पण करेंगे। इन परियोजनाओं की कुल लागत लगभग 11 हजार करोड़ रुपये बताई गई है। प्रधानमंत्री इस अवसर पर जनसभा को भी संबोधित करेंगे। द्वारका एक्सप्रेसवे के दिल्ली खंड और अर्बन एक्सटेंशन रोड-2 का करेंगे उद्घाटन - यातायात जाम से मिलेगी राहत, एनसीआर में बढ़ेगी मल्टी-मॉडल कनेक्टिविटी प्रधानमंत्री कार्यालय की तरफ से शनिवार को जारी आधिकारिक बयान में बताया गया है कि दोनों परियोजनाएं द्वारका एक्सप्रेसवे का दिल्ली खंड और अर्बन एक्सटेंशन रोड-द्वादृढ़ (यूईआर-द्वादृढ़) केंद्र सरकार की राजधानी दिल्ली को भीड़ मुक्त करने की रणनीति के अंतर्गत विकसित की गई हैं। इनका उद्देश्य बेहतर कनेक्टिविटी सुनिश्चित करना, यात्रा समय को घटाना और दिल्ली तथा उसके आस-पास के क्षेत्रों में ट्रैफिक दबाव को कम करना है। द्वारका एक्सप्रेसवे का दिल्ली खंड 10.1 किलोमीटर लंबा है, जिसे लगभग 5,360 करोड़ रुपये की लागत से विकसित किया गया है। इस खंड से यशोभूमि कन्वेंशन सेंटर, मेट्रो की ब्लू और ऑरेंज लाइन, आगामी बिजवासन रेलवे स्टेशन और द्वारका क्लस्टर बस डिपो को मल्टी-मॉडल कनेक्टिविटी मिलेगी। इस खंड में दो प्रमुख पैकेज शामिल हैं- पैकेज-1- शिव मूर्ति इंटरसेक्शन से द्वारका सेक्टर-21 के रोड अंडर ब्रिज (आरयूबी) तक 5.9 किलोमीटर। वहीं पैकेज-2- द्वारका सेक्टर-21 से दिल्ली-हरियाणा सीमा तक 4.2 किलोमीटर, जो सीधे यूईआर-द्वादृढ़ से जोड़ेगा।

उल्लेखनीय है कि द्वारका एक्सप्रेसवे का 19 किलोमीटर लंबा हरियाणा खंड मार्च 2024 में प्रधानमंत्री द्वारा पहले ही उद्घाटित किया जा चुका है। इसके अलावा प्रधानमंत्री मोदी अर्बन एक्सटेंशन रोड-द्वादृढ़ (यूईआर-द्वादृढ़) के अलीपुर से डिचाऊकलां तक के खंड और बहादुरगढ़ व सोनीपत से जोड़ने वाले नए लिंक रोड्स का भी उद्घाटन करेंगे। इस परियोजना पर करीब 5,580 करोड़ रुपये खर्च किए गए हैं। यह सड़क दिल्ली की इनर और आउटर रिंग रोड, मुकरबा चौक, धौला कुआं और एनएच-09 जैसे व्यस्त ट्रैफिक बिंदुओं पर भीड़ को कम करने में सहायक होगी। नए संपर्क मार्गों से बहादुरगढ़ और सोनीपत को सीधे जुड़ाव मिलेगा, जिससे औद्योगिक क्षेत्रों को बेहतर कनेक्टिविटी, मालवाहन में तेजी और राजधानी क्षेत्र में ट्रैफिक बोझ में उल्लेखनीय कमी आएगी। जांच में सामने आया है कि आरोपी ने सरकारी पिस्तौल ठिकाने लगाने के लिए तीनों को वह दी थी।

वसंत विहार में दीवार गिरने से दो बच्चों की मौत

नई दिल्ली ,एजेंसी। दक्षिण-पश्चिम दिल्ली के वसंत विहार इलाके में दिन भर हुई भारी बारिश के बाद बृहस्पतिवार शाम दीवार गिरने से दो बच्चों की मौत हो गई। पुलिस ने मामले की जांच शुरू कर दी है।

जिला पुलिस उपायुक्त अमित गोयल ने बताया, बृहस्पतिवार शाम करीब 4.40 बजे बसंत नगर स्थित हनुमान मंदिर के पास बिहार के मधुबनी निवासी नौ साल और बेगूसराय निवासी दस साल के दोनों बच्चे दीवार से सटी सीढ़ियों पर बैठे थे, तभी अचानक दीवार ढह गई। सूचना पर पुलिस आपदा प्रबंधन टीम के साथ घटनास्थल पर पहुंची। मलबा हटाकर दोनों बच्चों को बाहर निकाला गया। पीसीआर वैन में एम्स ट्रॉमा सेंटर ले जाया गया जहा डॉक्टरों ने दोनों को मृत घोषित कर दिया। पुलिस उपायुक्त ने बताया, शुरुआती जांच में पता चला है दीवार दिल्ली विकास प्राधिकरण (डीडीए) की है। आशंका है कि लंबे समय से हो रही बारिश और इलाके में जलभराव से यह कमजोर हो गई होगी। पुलिस ने बताया, किसी और को असुविधा न हो, यह सुनिश्चित करने के लिए मलबा हटाया जा रहा है। ये भी पता किया जा रहा है कि मलबे में कोई और तो नहीं फंसा है। उन्होंने बताया कि डीडीए को सूचित कर दिया गया है और का विस्तृत निरीक्षण किया जाएगा।

चावल फेंकने वाले डॉक्टर पर न्यायाधीश ने लगाया जुर्माना, अदालत ने कहा- ऐसा व्यवहार चौंकाने वाला

नई दिल्ली , एजेंसी। तीस हजारी कोर्ट ने हाल ही में मेडिकल सर्जन पर जुर्माना लगाया है, जो 2011 के हत्या के मामले में मुकदमे का सामना कर रहा है। उसने अदालत कक्ष में डायस के सामने चावल फेंककर अदालती कार्यवाही में बाधा डाली थी। अदालत में मौजूद वकील आरोपी की तरफ से काला जादू किए जाने के शक में अपनी दलीलें रखने के लिए आगे आने से हिचकिचा रहे थे। अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश शेफाली बरनाला टंडन ने डॉ. चंदर विभास को अदालत के अगले दिन उठने तक की सजा सुनाई। उस पर दो हजार रुपये का जुर्माना भी लगाया गया, जो उसने उसी दिन जमा कर दिया। अदालत ने हरि नगर में दर्ज हत्या के मामले में आरोपी विभास के मामले की सुनवाई 11 अगस्त को निर्धारित की थी। मामले पर विचार करते हुए अदालत ने कहा कि यह अदालत के लिए बेहद चौंकाने वाला और आश्चर्यजनक है कि आरोपी जो पेशे से सर्जन बताए जाते हैं और शिक्षित वर्ग से हैं। उन्होंने इस तरह अनुचित तरीके से काम किया है और अदालती कार्यवाही में बाधा उत्पन्न की है। अदालत की कार्यवाही लगभग 15-20 मिनट तक रुकी रही।

पुलिसकर्मी की पिस्तौल चोरी करने वाले तीन आरोपी गिरफ्तार, सीसीटीवी की मदद से पकड़े

नई दिल्ली , एजेंसी। मॉडल टाऊन स्थित दिल्ली पुलिस के अधिकारियों की रिहायशी कॉलोनी स्थित अपराध शाखा में तैनात एसआई के घर से सरकारी पिस्तौल और अन्य सामान चोरी करने वाले तीन आरोपियों को दिल्ली पुलिस की अपराध शाखा ने गिरफ्तार कर लिया है। आरोपियों संदीप, अनमोल और सुनील के पास से सरकारी पिस्तौल बरामद कर ली है। आरोपियों को कोर्ट में पेश कर जेल भेज दिया गया है। जबकि पुलिस पिस्तौल चोरी करने वाले मुख्य आरोपी दीपक कुमार की तलाश कर रही है। पुलिस अधिकारी ने बताया कि पीड़ित पुलिसकर्मी विकास कुमार अपने परिवार के साथ मॉडल टाऊन स्थित पुलिस कॉलोनी में रहता है। एसआई विकास कुमार की तैनाती सनलाइट कॉलोनी अपराध शाखा के आफिस में है। पुलिस को दिए बयान में उसने बताया कि उनकी टीम के पास एक सूचना आई थी कि कुछ बदमाशों को पकड़ने के लिए देर रात छापेमारी हो सकती है। 5 अगस्त को उन्होंने पिस्तौल, कारतूस और हथकड़ी जारी कराके अपने घर ले गए। छह अगस्त की सुबह वह अपने बेटी को स्कूल छोड़ने के लिए चले गए। इस दौरान उनके घर में पत्नी रसोई में थी और बेटा अपने कमरे में सो रहा था। स्कूल से लौट कर वह तैयार हुए और आफिस जाने के लिए निकले। इस दौरान उन्होंने देखा कि घर की टेबल पर रखी उनकी सरकारी पिस्तौल, लैपटॉप, डायरी और हथकड़ी गायब थी। गायब सामान की पूरे घर में तलाश की गई, लेकिन सामान नहीं मिला। उन्होंने पुलिस को शिकायत दी। दिल्ली पुलिस की अपराध शाखा ने संबंधित धारा में केस दर्ज कर जांच शुरू की।

तीन गिरफ्तार, पिस्तौल बरामद : पुलिस अधिकारी ने बताया कि सीसीटीवी की मदद से आरोपियों की पहचान की। आरोपी की पहचान के बाद उसकी जानकारी जुटाई गई तो पता चला कि वह दिल्ली छोड़ गया है। उसके सम्पर्क में जो लोग है वह दिल्ली में ही हैं। पुलिस ने सीडीआर की मदद से आरोपी दीपक के दोस्तों की जानकारी निकाली और अलग अलग जगहों पर छापेमारी कर तीन लोगों को गिरफ्तार किया। आरोपियों में शामिल अनमोल के पास से खाली मैगजीन, सुनील के पास से कारतूस और संदीप के पास से पिस्तौल बरामद की। चोरी करने वाले दीपक की पुलिस अभी तलाश कर रही है। मामले में कोर्ट में पेश अधिवक्ता दीपक त्यागी ने बताया कि तीनों आरोपियों को जेल भेज दिया गया है।

दिल्ली में फिर दिखा थार का कहर- बेकाबू गाड़ी ने बाइक सवार को रौंदा, पांच बच्चों के सिर से उठा पिता का साया

नई दिल्ली, एजेंसी। राजधानी दिल्ली में एक बार फिर तेज रफ्तार बेकाबू थार का कहर देखने को मिली। मोती नगर इलाके में कार ने बाइक सवार शख्स को रौंद दिया। इस घटना में बाइक सवार शख्स की मौत हो गई। मृतक शख्स की पहचान बेचू लाल (40) के रूप में हुई है। घटना के बाद से आरोपी कार चालक फरार है। पुलिस आरोपी की तलाश कर रही है। इससे पहले इसी महीने चाणक्यपुरी इलाके में इसी तरह की घटना सामने आई थी, जहां थार सवार ने दो लोगों को कुचल दिया था, जिनमें से एक की मौत हो गई थी और एक गंभीर रूप से घायल हो गया था।

पश्चिम जिला पुलिस उपायुक्त विचित्र वीर ने बताया कि मध्यरात्रि को मोती नगर थाना पुलिस को एक दुर्घटना की सूचना मिली है। इस दुर्घटना में एक बाइक को थार वाहन ने टक्कर मार दी थी। बाइक सवार की मौके पर मौत हो चुकी थी। घटना के बाद थार का चालक मौके से भाग गया। पुलिस सीसीटीवी कैमरे के जरिए चालक की पहचान कर उसको पकड़ने के लिए दबिश दे रही है। उसे पकड़ने के लिए कई टीमें गठित की गई हैं।

पांच छोटे बच्चों के सिर से उठा पिता का साया : मृतक बेचू लाल की बहन किरण ने बताया, ÷पुलिसवालों ने हमें एक वीडियो दिखाया और बताया कि उनकी बाइक खड़ी थी और थार ने बाइक को ज़ोर से टक्कर मार दी। उन्होंने कहा कि वे तुरंत कार्रवाई करेंगे और ड्राइवर को जल्द ही पकड़ लेंगे। मेरे भाई के पांच छोटे बच्चे गांव में रहते हैं।÷

परिवार में अकेला कमाने वाला था बेचू लाल : मृतक के भाई नोमी लाल ने बताया, ÷वह कल रात अपने बेटे को यह कहकर घर से निकले थे कि वह 10 मिनट में वापस आ जाएंगे। पूरी रात उनका बेटा फोन करता रहा और हम उनको ढूंढ़ते रहे। सुबह हमें पता चला कि क्या हुआ था। उन्हें एक कार ने इतनी बुरी तरह टक्कर मारी थी कि उनकी बाइक पूरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गई और उनकी छाती पर चोटें आईं। हम चाहते हैं कि उचित कार्रवाई की जाए। मेरे भाई के पांच बच्चे थे और वह परिवार में अकेले कमाने वाले थे।÷

जब पैदल चल रहे दो लोगों को थार ने कुचला : बता दें कि इसी महीने 10 अगस्त को एक थार सवार ने सड़क पर पैदल चल रहे दो लोगों को कुचल दिया था। जिनमें से एक की मौके पर ही मौत हो गई और दूसरा गंभीर रूप से घायल हो गया।

बिहार में हुए हत्याकांड में वांछित भगोड़ा बदमाश दिल्ली में गिरफ्तार

नई दिल्ली, एजेंसी। दिल्ली पुलिस की अपराध शाखा ने बिहार पुलिस के साथ मिलकर संयुक्त रूप से बिहार के वैशाली स्थित हाजीपुर टाउन थाना क्षेत्र में हुए हत्याकांड के वांछित भगोड़े बदमाश को गिरफ्तार किया। गिरफ्तार आरोपी नीलेश कुमार ने वर्ष 2023 में अपने चाचा की हत्या कर दी थी। अपराध शाखा के पुलिस उपायुक्त हर्ष इंदौरा ने बताया, बिहार पुलिस ने आरोपी को पकड़ने के लिए दिल्ली पुलिस से मदद और सहयोग मांगा था। क्योंकि उसकी आखिरी लोकेशन दिल्ली में मिली थी। पुलिस ने सेक्टर-35, रोहिणी, में घेराबंदी कर उसे गिरफ्तार कर लिया। आरोपी ने पूछताछ में बताया कि उसने अपने दो अन्य साथियों तेज प्रताप व मोहम्मद आसिफ मुस्तफा के साथ मिलकर परिवार के बीच पुराने संपत्ति विवाद के चलते अपने चाचा की हत्या कर दी थी। अब तक केवल एक आरोपी तेज प्रताप को गिरफ्तार किया जा सका था।

दहेज उत्पीड़न मामले में दोषी वायुसेना कर्मी की अनिवार्य सेवानिवृत्ति रद्द

नई दिल्ली, एजेंसी। दिल्ली हाई कोर्ट ने दहेज उत्पीड़न के मामले में दोषी ठहराए गए वायु सेना के लेखा परीक्षक की अनिवार्य सेवानिवृत्ति के निर्णय को पलटते हुए उनकी सेवा में बहाली का आदेश दिया है। न्यायमूर्ति नवीन चावला और न्यायमूर्ति रेनू भटनागर की पीठ ने कहा, याचिकाकर्ता के साथ ट्रायल कोर्ट ने नरमी बरती थी और उन्हें अपराधी परिवीक्षा अधिनियम के तहत परिवीक्षा पर रिहा किया गया था। ऐसे में अनुशासनात्मक प्राधिकारी की ओर से अनिवार्य सेवानिवृत्ति का कठोर दंड देना उचित नहीं है।

याचिकाकर्ता ने 30 सितंबर 1997 को दी गई अनिवार्य सेवानिवृत्ति को चुनौती देते हुए हाई कोर्ट में याचिका दायर की थी। याचिका के अनुसार, याचिकाकर्ता देहरादून स्थित रक्षा लेखा नियंत्रक (वायु सेना) के कार्यालय में लिपिक के पद पर कार्यरत थे। बाद में उन्हें लेखा परीक्षक के पद पर पदोन्नत किया गया था। जनवरी 1997 में सहारनपुर की मजिस्ट्रेट अदालत ने याचिकाकर्ता को दहेज उत्पीड़न के मामले में दोषी ठहराया था। इसके बाद विभाग ने सितंबर 1997 में उन्हें अनिवार्य रूप से सेवानिवृत्त कर दिया था। हालांकि, सत्र न्यायालय ने सजा को बरकरार रखते हुए याचिकाकर्ता को परिवीक्षा अधिनियम के तहत लाभ प्रदान कर रिहा कर दिया था। अनुशासनात्मक प्राधिकारी ने दावा किया था कि परिवीक्षा पर रिहाई दोषसिद्धि को समाप्त नहीं करती और ऐसे व्यक्ति को लोक सेवा में बनाए रखना उचित नहीं है। हालांकि, हाई कोर्ट की पीठ ने कहा कि परिवीक्षा अधिनियम का उद्देश्य सुधारात्मक है, जो पहली बार दोषी ठहराए गए व्यक्ति को कारावास की सजा के बिना समाज में पुनः एकीकरण का अवसर देता है। इस टिप्पणी के साथ कोर्ट ने याचिकाकर्ता को उनकी अनिवार्य सेवानिवृत्ति की तिथि से सेवा में बहाल करने का निर्देश दिया। हालांकि, कोर्ट ने स्पष्ट किया कि याचिकाकर्ता अनिवार्य सेवानिवृत्ति की तिथि से बहाली की तिथि तक किसी भी वेतन या भत्तों के लिए पात्र नहीं होंगे।

पतंग पकड़ने की कोशिश में नाले में गिरा बच्चा, अंधेरे के कारण रोकना पड़ा तलाशी अभियान

नई दिल्ली, एजेंसी। राजधानी दिल्ली में एक बच्चा नाले में गिर गया। उसकी तलाश की गई लेकिन देर शाम तक उसका कुछ पता नहीं चल पाया। अंधेरे के कारण तलाशी अभियान बंद कर दिया गया था। जानकारी के अनुसार, 15 अगस्त की शाम को थाना वेलकम में एक बच्चे के नाले में गिरने की सूचना मिली। पुलिस लकड़ी मार्केट पुलिया के पास नाले पर पहुंची। जांच में पता चला कि पतंग पकड़ने की कोशिश में एक सात वर्षीय बच्चा गलती से नाले में गिर गया था। डीडीएमए को सूचित किया गया और खोज एवं बचाव अभियान शुरू किया गया। हालांकि अंधेरे के कारण अभियान को रोकना पड़ा।

दिल्ली की मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता ने अपने कार्यालय को ई-ऑफिस में बदला, पूरा सचिवालय होगा पेपरलेस

नई दिल्ली , एजेंसी। मुख्यमंत्री रेखा गुप्ता ने सचिवालय को पूरी तरह पेपरलेस बनाने की घोषणा की है। उन्होंने कहा कि उनका कार्यालय ई-ऑफिस में बदल गया है और अब सभी सरकारी दफ्तरों को डिजिटल किया जा रहा है। इस कदम से काम तेज, पारदर्शी और पर्यावरण के लिए बेहतर होगा। दिल्ली सरकार के 199 में से 119 विभाग अब पूरी तरह ई-ऑफिस पर काम कर रहे हैं। जुलाई में 1.18 लाख से ज्यादा डिजिटल फाइलों का उपयोग हुआ जो पिछले माह से 250 फीसदी ज्यादा है। सचिवालय में शनिवार को विधायक दल की बैठक के बाद मुख्यमंत्री ने कहा कि राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केंद्र (एनआईसी) के ई-ऑफिस प्लेटफॉर्म ने प्रशासन को नया रंग दिया है। कागजी फाइलों को डिजिटल करने से न सिर्फ कागज बचा है बल्कि फाइलों की ट्रैकिंग, फैसले लेने और काम लागू करने की रफ्तार भी बढ़ी है। इस बार का 4-8 अगस्त को विधानसभा सत्र ई-विधान प्रणाली से चलेगा। ये बदलाव उनकी सरकार की पारदर्शी और दक्षता वाली सोच को दर्शाता है। कल विधानसभा ई-विधान प्रणाली से चलेगी सीएम ने कहा कि डिजिटल सिस्टम से हर अधिकारी की जिम्मेदारी तय होगी और फाइलें कितने दिन रुकी हैं इसका हिसाब रखा जाएगा। कागज की खपत कम होने से पर्यावरण को भी फायदा होगा। सोमवार को विधानसभा पूरी तरह ई-विधान प्रणाली से चलेगी और पूरी तरह पेपरलेस होगी।

ट्रंप का नोबेल शांति पुरस्कार का सपना होगा पूरा? हिलेरी क्लिंटन बोलीं- मैं खुद करूंगी सिफारिश, अगर

वाशिंगटन, एजेंसी। अमेरिकी राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप नोबेल शांति पुरस्कार को लेकर लगातार चर्चा में चल रहे हैं। ऐसे में अमेरिका की पूर्व विदेश मंत्री और डेमोक्रेटिक पार्टी की नेता हिलेरी क्लिंटन ने ट्रंप और नोबेल शांति पुरस्कार को लेकर एक बड़ा बयान दिया है। उन्होंने कहा कि अगर राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप रूस और यूक्रेन युद्ध को बिना यूक्रेन की जमीन गंवाए खत्म करवा देते हैं, तो वह खुद उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार के लिए नामांकित करेंगी। बता दें कि हिलेरी क्लिंटन ने यह बयान उस वक्त सामने आया जब ट्रंप और पुतिन ने शुक्रवार को अलास्का के मिलिट्री बेस पर रूस और यूक्रेन युद्ध को खत्म करने के लिए अहम वार्ता की। इस वार्ता में पुतिन ने ट्रंप से कई हद तक सहमति जताई है।

इस आधार पर हिलेरी करेंगी ट्रंप को नामांकित : एक पॉडकास्ट इंटरव्यू में हिलेरी क्लिंटन ने कहा कि यूक्रेन के बिना जमीन गंवाए अगर ट्रंप इस भयानक युद्ध को खत्म कर पाते हैं। साथ ही अगर वो वाकई पुतिन का सामना सख्ती से कर पाते हैं जैसा हमने अब तक नहीं देखा है और वो इसके पीछे के योजनाकार बनते हैं, तो मैं उन्हें नोबेल शांति पुरस्कार के लिए नामांकित करूंगी। क्लिंटन ने आगे ये भी कहा कि ट्रंप एक दोस्त से नहीं, बल्कि एक ऐसे विरोधी से मिलने जा रहे हैं जो अमेरिका और पश्चिमी देशों के गठबंधन को खत्म करना चाहता है।

ट्रंप और क्लिंटन की पुरानी दुश्मनी : गौरतलब है कि 2016 के अमेरिकी राष्ट्रपति चुनाव में डोनाल्ड ट्रंप ने हिलेरी क्लिंटन को हराया था। उस दौरान क्लिंटन ने ट्रंप की रूस और पुतिन के प्रति नरम रवैये की आलोचना की थी। उन्होंने कहा था कि वो व्लादिमीर पुतिन जैसे तानाशाहों की तारीफ करते हैं और अपने सहयोगी देशों से लड़ते हैं। लेकिन अब हिलेरी का यह बयान कि वह ट्रंप को नोबेल शांति पुरस्कार के लिए नामांकित कर सकती हैं अगर वे युद्ध को सम्मानजनक तरीके से खत्म करते हैं, यह संकेत देता है कि राजनीति से ऊपर शांति की कोशिशों को महत्व दिया जाना चाहिए।

क्या हुआ ट्रंप और पुतिन के बैठक में: रूस और यूक्रेन के बीच शांति के लिए पुतिन और ट्रंप के बीच अलास्का में हुई बैठक में पुतिन कई हद तक ट्रंप से सहमत नजर आएं। बैठक के बाद दोनों नेताओं ने बैठक के बाद एक संयुक्त प्रेस वार्ता की। इस प्रेस वार्ता में कदमों की जानकारी दी।

माया जंगल की रक्षा के लिए तीन देशों में समझौता, दुनिया के फेफड़े माने जाते हैं वर्षा वन

मेक्सिको सिटी, एजेंसी। मेक्सिको, ग्वाटेमाला और बेलीज के नेताओं ने शुक्रवार को घोषणा की कि वे माया वर्षावनों की रक्षा के लिए एक त्रि-राष्ट्रीय प्राकृतिक आरक्षित क्षेत्र बना रहे हैं। इस बैठक में माया वन क्षेत्र में मेक्सिको रेल लाइन के विस्तार पर भी चर्चा हुई। पेड़ों की कटाई के चलते इस रेल लाइन प्रोजेक्ट की आलोचना हो रही है।

दुनिया के फेफड़े माने जाते हैं माया वन : माया वर्षा वन आरक्षित क्षेत्र दक्षिणी मेक्सिको और ग्वाटेमाला और बेलीज के उत्तरी भागों के जंगली इलाकों में फैला होगा, जिसका क्षेत्रफल 1.40 करोड़ एकड़ से ज्यादा है। मेक्सिको की राष्ट्रपति क्लाउडिया शीनबाम ने इस कदम को ऐतिहासिक बताया और कहा कि इससे लैटिन अमेरिका में अमेजन वर्षावन के बाद दूसरा सबसे बड़ा प्रकृति आरक्षित क्षेत्र बनेगा, जो दुनिया के लिए फेफड़े का काम करेगा और इससे प्रदूषण पर लगाम लगेगी। ग्वाटेमाला के राष्ट्रपति बर्नार्डो एरेवालो और बेलीज के प्रधानमंत्री जॉनी ब्रिसेनो के साथ समझौते पर हस्ताक्षर के बाद मेक्सिको की राष्ट्रपति क्लाउडिया शीनबाम ने कहा, यह पृथ्वी के फेफड़ों में से एक है, हजारों प्रजातियों का घर है जिसकी एक अमूल्य सांस्कृतिक विरासत है। हमें भविष्य को ध्यान में रखते हुए संरक्षित करना चाहिए।

रेल लाइन प्रोजेक्ट पर विवाद: तीनों देशों के नेताओं ने मेक्सिको द्वारा दक्षिणी मेक्सिको से ग्वाटेमाला और बेलीज तक बनाए जा रहे माया ट्रेन प्रोजेक्ट पर भी चर्चा हुई। करीब हजार मील लंबी यह रेलगाड़ी वर्तमान में मेक्सिको के युकाटन प्रायद्वीप तक चलती है, और इसका निर्माण मेक्सिको के लोकप्रिय रिसॉर्ट्स को ग्रामीण क्षेत्रों में सुदूर जंगलों और माया पुरातात्विक स्थलों से जोड़ने के उद्देश्य से किया गया था। हालांकि इस पर खूब विवाद हुआ क्योंकि इस प्रोजेक्ट के लिए बड़े पैमाने पर पेड़ काटे गए और अनुमान है कि बीते चार वर्षों में इस प्रोजेक्ट के लिए 70 लाख पेड़ काटे गए हैं। साथ ही इस प्रोजेक्ट के चलते माया वन में संरक्षित क्षेत्रों को भी नुकसान पहुंचा। मेक्सिको की राष्ट्रपति शिनबाम भी इस प्रोजेक्ट के समर्थन में हैं, लेकिन ग्वाटेमाला की सरकार ने साफ कर दिया है कि वे संरक्षित वन क्षेत्र में इस प्रोजेक्ट को मंजूरी नहीं देंगे। ऐसे में बीच का रास्ता निकालने पर चर्चा हो रही है।

विदेश मंत्री मार्को रुबियो बोले- मिलकर आधुनिक चुनौतियों का सामाना करेंगे भारत-अमेरिका

वॉशिंगटन, एजेंसी। भारत आज 79वां स्वतंत्रता दिवस मना रहा है। इस मौके पर अमेरिकी विदेश मंत्री मार्को रुबियो ने देशवासियों को आजादी की शुभकामनाएं दीं। उन्होंने कहा कि आने वाले दिनों में आधुनिक चुनौतियों का मुकाबला करने के लिए भारत और अमेरिका मिलकर काम करेंगे। मार्को रुबियो ने भारत और अमेरिका के बीच ऐतिहासिक और दूरगामी संबंधों को रेखांकित भी किया। पीएम मोदी ने कहा कि दोनों देश मिलकर आधुनिक चुनौतियों का सामना करेंगे और अपने-अपने देशों के लिए उज्ज्वल भविष्य सुनिश्चित करेंगे।

भारत और अमेरिका के रिश्ते ऐतिहासिक और बेहद महत्वपूर्ण : जश्न-ए-आजादी मना रहे भारतवासियों को बधाई और शुभकामनाएं देते हुए रुबियो ने अपने संदेश में कहा, दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र (भारत) और सबसे पुराने लोकतंत्र (अमेरिका) के बीच का यह संबंध न केवल ऐतिहासिक है बल्कि बेहद महत्वपूर्ण भी है। उन्होंने विश्वास जताया कि मिलकर काम करते हुए दोनों देश आज की जटिल और बदलती वैश्विक चुनौतियों का समाधान करने में सक्षम होंगे।

समृद्ध और सुरक्षित हिंद-प्रशांत क्षेत्र दोनों देशों का नजरिया : भारत और अमेरिका के साझा दृष्टिकोण का जिक्र करते हुए रुबियो ने कहा, दोनों देशों का नजरिया एक है जो अधिक शांतिपूर्ण, समृद्ध और सुरक्षित हिंद-प्रशांत (इंडो-पैसिफिक) क्षेत्र के निर्माण पर केंद्रित है। अमेरिकी विदेश मंत्री के मुताबिक दोनों देशों की साझेदारी विभिन्न क्षेत्रों में फैली हुई है। मिलकर काम करने से उद्योग जगत को मजबूती मिलने के साथ-साथ नवाचार को भी प्रोत्साहन मिलता है। महत्वपूर्ण एवं उभरती प्रौद्योगिकियों में नई सीमाएं तय करने के अलावा दोनों देशों की साझेदारी से अंतरिक्ष क्षेत्र तक विस्तार हुआ है।

पूरी दुनिया को लाभ मिलेगा : रुबियो ने यह भी रेखांकित किया कि दोनों देशों का सहयोग केवल आर्थिक या तकनीकी क्षेत्र तक सीमित नहीं है। यह वैश्विक स्थिरता और सुरक्षा के लिए भी महत्वपूर्ण है। भारत-अमेरिका संबंधों का प्रभाव अंतरराष्ट्रीय मंचों पर भी दिखता है, जहां दोनों देश लोकतांत्रिक मूल्यों, नियम-आधारित वैश्विक व्यवस्था और आपसी सहयोग की वकालत करते हैं। अमेरिकी विदेश मंत्री ने कहा कि दोनों देशों की साझेदारी आने वाले वर्षों में और गहरी होगी। इससे पूरी दुनिया को लाभ मिलेगा।

अमेरिका का नाम लिए बिना पीएम मोदी का बड़ा संदेश : रुबियो के शुभकामना संदेश से इतर भारत के राष्ट्रीय समारोह में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने देशवासियों को संबोधित किया। उन्होंने लाल किले की प्राचीर से पूरी दुनिया को का नाम लिए आत्मनिर्भरता का जिक्र किया।

हर्षोल्लास के साथ परम्परागत एवं गरिमामय ढंग से मनाया गया स्वतंत्रता दिवस

स्वतंत्रता दिवस में जिले में आन-बान-शान से लहराया तिरंगा, कार्यक्रम में प्रभारी मंत्री ने ध्वजारोहण कर ली परेड की सलामी

मुख्यमंत्री के उद्बोधन का हुआ सजीव प्रसारण

मीडिया ऑडीटर, सीधी (निप्र)। देश की आजादी के 79वें स्वतंत्रता दिवस का पावन पर्व पर पूरे जिले में हर्षोल्लास से मनाया गया। सीधी जिला मुख्यालय पर स्वतंत्रता दिवस मुख्य समारोह पुलिस परेड ग्राउण्ड पर पूरे उत्साह और गरिमामय ढंग के साथ सम्पन्न हुआ जहां समारोह के मुख्य अतिथि प्रदेश के कुटीर एवं ग्रामोद्योग राज्यमंत्री (स्वतंत्र प्रभार) तथा जिले के प्रभारी मंत्री दिलीप जायसवाल ने ध्वजारोहण किया। इस दौरान राष्ट्रगान का गायन हुआ। तत्पश्चात् प्रभारी मंत्री ने परेड का निरीक्षण किया, इस दौरान कलेक्टर स्वरोचिष सोमवंशी एवं पुलिस अधीक्षक डॉ रविन्द्र वर्मा भी उनके साथ रहे। मुख्य अतिथि द्वारा समृद्धि के प्रतीक रंगीन गुब्बारे नील गगन में छोड़ने के पश्चात परेड द्वारा तीन बार हर्ष फायर किया गया।

उप पुलिस अधीक्षक सुजीत कुमार कड़वे के कमाण्ड में आकर्षक मार्च पास्ट किया गया। परेड के उप कमाण्डर प्लाटून कमांडर मयंक तिवारी होम गार्ड रहे। इसमें उपनिरीक्षक नरेन्द्र कुमार मिश्रा के नेतृत्व में 9वीं वाहिनी विसबल ए कंपनी सीधी, उप निरीक्षक तरुण बेड़िया के नेतृत्व में जिला पुलिस बल सीधी, उपनिरीक्षक वर्षा यादव के नेतृत्व में जिला पुलिस बल महिला, सहायक उपनिरीक्षक जयगोपाल साकेत के नेतृत्व में होमगार्ड जिला बल सीधी, प्रभात प्रजापति के नेतृत्व में सीनियर एनसीसी संजय गांधी स्मृति महाविद्यालय सीधी, अमितेन्द्र अग्निहोत्री के नेतृत्व में एनसीसी उत्कृष्ट विद्यालय क्रमांक 1 सीधी, उधव प्रताप सिंह के नेतृत्व में जूनियर एनसीसी गणेश सीनियर सेकेंड्री स्कूल पड़रा सीधी, वेद सिंह चौहान के नेतृत्व में सरस्वती उमावि मड़रिया सीधी, दिया अवधिया के नेतृत्व में सांदीपनि शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सीधी, पूजा कोरी के नेतृत्व में पीएमश्री शासकीय आदर्श कन्या हा स्कूल सीधी, शुभम सिंह चौहान के नेतृत्व में एकलव्य पब्लिक हायर सेकेंड्री स्कूल हड़बड़ो, अभिमन्यु प्रजापति के नेतृत्व में शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय क्रमांक 2 सीधी, प्रियांशु कोरी के नेतृत्व में महारानी लक्ष्मीबाई हाई स्कूल सीधी, अर्जुन सिंह चौहान के नेतृत्व में गुरुकुल पब्लिक हायर सेकेंड्री स्कूल मड़रिया सीधी, कु मधु कोल के नेतृत्व में महिला बाल विकास शौर्य दल तथा जिला पुलिस बल सीधी के बैण्ड दल द्वारा आकर्षक परेड का प्रदर्शन कर मुख्य अतिथि को सलामी दी गई। इसके पश्चात मुख्य अतिथि द्वारा परेड कमाण्डर एवं प्लाटून कमाण्डर से परिचय प्राप्त किया गया।

समारोह के मुख्य अतिथि प्रभारी मंत्री जायसवाल ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों के परिजनों, वीर शहीदों के परिजनों तथा लोकतंत्र के प्रहरियों का शाल एवं श्रीफल भेंटकर सम्मान किया। इस वर्ष नवाचार करते हुए मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के उद्बोधन का सजीव प्रसारण कार्यक्रम स्थल पर दिखाया गया, जिसे उपस्थित लोगों ने बड़े उत्साह के साथ सुना। इसके पश्चात मुख्य अतिथि प्रभारी मंत्री द्वारा जिले की उपलब्धियों को प्रदर्शित करते हुए मुख्यमंत्री के बधाई संदेश का वाचन कर लोगों को स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाएं और बधाई दी।

सांस्कृतिक कार्यक्रम में गुरूकुल विद्यालय मड़रिया सीधी, शासकीय उत्कृष्ट उ.मा.वि. क्रमांक 1 सीधी, सांदीपनि विद्यालय सीधी एवं एकलव्य पब्लिक स्कूल सीधी द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम की प्रस्तुत दी गई। अंत में गांधी विद्यालय द्वारा बैण्ड दल का प्रदर्शन किया गया।

उत्कृष्ट कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को किया गया पुरष्कृत: मुख्य अतिथि जिले के प्रभारी मंत्री दिलीप जायसवाल द्वारा उत्कृष्ट कार्य करने वाले अधिकारियों एवं कर्मचारियों को पुरस्कार एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान किये गये। इस दौरान उनके साथ विधायक सीधी रीती पाठक, जिला पंचायत अध्यक्ष मंजू सिंह, कलेक्टर स्वरोचिष सोमवंशी तथा पुलिस अधीक्षक डॉ रविन्द्र वर्मा उपस्थित रहे।

सम्मान एवं पुरस्कार वितरण समारोह की श्रृंखला में सर्वोत्तम परेड सीनियर का पुरस्कार महिला जिला पुलिस बल सीधी को दिया गया। सर्वोत्तम परेड परेड सीनियर का द्वितीय पुरस्कार सीनियर एन.सी.सी. संजय गांधी स्मृति महाविद्यालय सीधी एवं तृतीय पुरस्कार होमगार्ड जिला बल सीधी को दिया गया। सर्वोत्तम परेड जूनियर का पुरस्कार जूनियर एन.सी.सी. शासकीय उत्कृष्ट उच्चतर माध्यमिक विद्यालय सीधी को दिया गया। परेड जूनियर का द्वितीय पुरस्कार जूनियर एन.सी.सी. गणेश सी.से. स्कूल पड़रा सीधी एवं तृतीय पुरस्कार सरस्वती उ.मा.वि. मड़रिया सीधी को दिया गया। इसी प्रकार सांस्कृतिक कार्यक्रम का प्रथम पुरस्कार एकलव्य पब्लिक स्कूल सीधी को दिया। सांस्कृतिक कार्यक्रम का द्वितीय पुरस्कार शासकीय उत्कृष्ट उ.मा.वि. क्रमांक-1 सीधी एवं तृतीय पुरस्कार गुरूकुल विद्यालय मड़रिया सीधी को दिया गया।

वित्तीय सुविधाएं एवं जागरूकता के उद्देश्य से सक्षम केंद्र का शुभारंभ

मीडिया ऑडीटर, सीधी (निप्र)। राज्य कार्यालय ग्रामीण आजीविका मिशन भोपाल से प्राप्त निर्देशानुसार जिला परियोजना प्रबंधक पुष्पेंद्र कुमार सिंह के निर्देशन में आजीविका सक्षम केंद्र (वित्तीय साक्षरता) का शुभारंभ एकता संकुल स्तरीय संगठन बरिगवा विकासखंड सीधी में दिव्यांग समूह सदस्य द्वारा जिला प्रबंधक सूक्ष्म वित्त अजय सिंह एवं विकासखंड प्रबंधक अशोक पांडेय की उपस्थित में किया गया।

सक्षम केंद्र का उद्देश्य स्व सहायता समूह सदस्यों एवं ग्रामीण जनों तक वित्तीय जागरूकता एवं आम जन तक वित्तीय सुविधाएं एवं सामाजिक सुरक्षा सुविधाएं पहुंचाने के उद्देश्य से किया गया है। सक्षम केंद्र में संबंधित बैंक सखी एवं बीसी सखी द्वारा समस्त समूह सदस्यों को बीमा योजनाओं बचत खाते एवं नगद रहित लेनदेन के अलावा ऑनलाइन धोखाधड़ी से संबंधित जागरूकता और सुरक्षा के बारे में समझाइश प्रदान की जाएगी।

अजय अवस्थी बने कांग्रेस जिला अध्यक्ष, पटवारी संग कार्यकर्ताओं ने मनाया जश्न

मीडिया ऑडीटर, शहडोल (निप्र)। मध्य प्रदेश कांग्रेस कमेटी ने शहडोल जिले में संगठनात्मक बदलाव करते हुए अजय अवस्थी को नया जिला अध्यक्ष नियुक्त किया है। शनिवार को जारी सूची में उनका नाम घोषित किया गया। ऑब्जर्वर्स ने जिलों में जाकर रायशुमारी कर अध्यक्ष के लिए नाम छांटे। दो महीने की एक्सरसाइज के बाद घोषित हुए जिला अध्यक्षों के नाम। अजय अवस्थी लंबे समय से कांग्रेस से जुड़े हैं और जिले में एक सक्रिय और जमीनी नेता के रूप में पहचान रखते हैं। कार्यकर्ताओं के बीच उनकी अच्छी पकड़ है। पूर्व जिला अध्यक्ष सुभाष गुप्ता ने भी उनके नाम का समर्थन किया था।

नई नियुक्ति के बाद कांग्रेस कार्यकर्ताओं में उत्साह का माहौल है। कई जगहों पर ढोल-नगाड़ों के साथ जश्न मनाया गया और मिठाइयां बांटी गई। कार्यकर्ताओं का मानना है कि जमीनी नेता को जिम्मेदारी मिलने से संगठन को नई ऊर्जा मिलेगी। अब अजय अवस्थी की अगुआई में कांग्रेस आगामी चुनावी चुनौतियों का सामना करेगी।

एक सरोवर, एक संकल्प- जल संरक्षण थीम पर मनाया गया अमृत सरोवर स्थलों में आजादी का पर्व

मीडिया ऑडीटर, सीधी (निप्र)। स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर जिले के प्रत्येक जनपद पंचायत के सभी अमृत सरोवर स्थलों पर ध्वजारोहण के साथ विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन किया गया। जनप्रतिनिधियों, पर्यावरण प्रेमियों, खिलाड़ियों, युवाओं आदि की भागीदारी सुनिश्चित करते हुए पर्यावरण संरक्षण और जल सुरक्षा को बढ़ावा देने के उद्देश्य से अमृत सरोवर स्थलों पर राष्ट्रीय ध्वज तिरंगा स्वतंत्रता सेनानी/उसके परिवार के सदस्य, स्वतंत्रता के बाद शहीद हुए किसी व्यक्ति/स्थानीय ग्राम पंचायत के सबसे वरिष्ठ नागरिक द्वारा ध्वजारोहण किया गया तथा विभिन्न कार्यक्रमों का सफल आयोजन किया गया। अमृत सरोवर स्थलों पर निर्वाचित जनप्रतिनिधियों, स्वयं सहायता समूहों (एसएचजी), युवाओं, स्कूली विद्यार्थियों आदि की सक्रिय भागीदारी रही।

प्रिज्म जॉनसन एवं प्रिज्म स्कूल में स्वतंत्रता दिवस समारोह मनाया गया

मीडिया ऑडीटर, सतना (निप्र)। भारतीय विद्या भवन प्रिज्म स्कूल एवं प्रिज्म जॉनसन लिमिटेड के संयुक्त तत्वावधान में 79वाँ स्वतंत्रता दिवस 2025 पारंपरिक जोश एवं उत्साह के साथ मनाया गया। इस पावन अवसर पर मुख्य अतिथि डॉ मनीष कुमार सिन्हा, सीनियर वाइस प्रेसीडेंट, एचआरएम एंड कारपोरेट अफेयर्स प्रिज्म जॉनसन लिमिटेड एवं अध्यक्ष, विद्यालय प्रबंधन समिति, विशिष्ट अतिथि मनीष कुमार सिंह प्रेसीडेंट एण्ड हेड प्लांट व अन्य गणमान्य अतिथि एवं अभिभावक उपस्थित रहे।

प्रिज़्म जॉनसन लिमिटेड के डीजीएम जनसंपर्क एंड सीएसआर देवेंद्र मिश्रा ने जानकारी देते हुए बताया कि शाला के मुख्य द्वार पर मुख्य अतिथि का स्वागत प्राचार्य डॉ0 रामानंद गोस्वामी, एस. पी. तिवारी, वीरेन्द्र गुप्ता व आषीष कुमार तिवारी के साथ प्रिज्म सुरक्षा विभाग की ओर से पायलट सुरेश सिंह पटेल, नागेन्द्र सिंह बघेल, कमांडर मनोज कुमार सोनी एवं विद्यालय पायलट यश पाण्डेय और आरिफ घरामी ने किया। समारोह का शुभारंभ मुख्य अतिथि द्वारा राष्ट्रीय ध्वज का आरोहण कर किया गया। तदुपरान्त शाला के छात्र-छात्राओं द्वारा मार्चपास्ट किया गया। परेड कमांडर हिमांशु तिवारी के साथ अलकनंदा सदन का अंबुज पटेल, कावेरी सदन का अमित शुक्ला, नर्मदा सदन का आदित्य सिंह सेंगर, बालिका वर्ग का प्रगति तिवारी एवं विद्यालय बैंड दल का कृपा शंकर ने नेतृत्व किया। प्राची सिंह द्वारा उपस्थित जन समुदाय को प्रतिज्ञा दिलाई गई।

राष्ट्रीय पर्व स्वतंत्रता दिवस समारोह के भव्य अवसर पर उपस्थित फैक्ट्री के अधिकारियों, कर्मचारियों तथा अभिभावकगण को संबोधित करते हुए मुख्य अतिथि महोदय डॉ मनीष कुमार सिन्हा ने शहीदों को स्मरण करते हुए उनको श्रद्धांजलि अर्पित की। मुख्य अतिथि महोदय ने अभिभावको एवं छात्रों को बताया कि स्वतंत्रता दिवस मनाना केवल ऐतिहासिक घटनाओं का स्मरण नहीं है वरन यह राष्ट्रप्रेम का प्रतीक है।

उन्होंने विद्यालय के चहुँमुखी विकास पर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए विश्वास दिलाया कि प्रिज्म जॉनसन लिमिटेड छात्रों के उत्तरोत्तर विकास के लिए कृत संकल्पित है।

ऑनलाइन सट्टा खिलाने वाली गैंग को पकड़ा, लैपटॉप-मोबाइल समेत 1.50 लाख का सामान जब्त

मीडिया ऑडीटर, अनूपपुर (निप्र)। बिजुरी पुलिस ने अंतरराज्यीय ऑनलाइन सट्टा गैंग को शनिवार को पकड़ा है। पुलिस ने इस मामले में तीन आरोपियों को छत्तीसगढ़ से गिरफ्तार किया है। मामला तब सामने आया जब मोहम्मद बिलाल ने थाने में शिकायत दर्ज कराई। बिलाल ने बताया कि सलमान मंसूरी ने नौकरी का झांसा देकर उससे 45 हजार रुपए की धोखाधड़ी की। साथ ही उसके और उसके भाइयों के नाम पर ।।ष्ठस्न्रष्ट बैंक में खाते खुलवाए। इन खातों का उपयोग ऑनलाइन सट्टे के लेन-देन में किया गया। इस कारण बैंक ने उनके खातों को होल्ड कर दिया।

इनको किया गिरफ्तार: पुलिस ने मामले में धारा 420 के तहत केस दर्ज किया। जांच के दौरान पुलिस ने मुख्य आरोपी सलमान मंसूरी को उसके दो साथियों के साथ गिरफ्तार किया। आरोपियों में शुभम वर्मा और विकास उर्फ विक्की यादव शामिल हैं। पुलिस ने आरोपियों से एक लैपटॉप, एक टैबलेट, 8 मोबाइल फोन, 12 हजार रुपए नकद और अन्य दस्तावेज बरामद किए। कुल बरामदगी 1.50 लाख रुपए की है। पूछताछ में आरोपियों ने कबूल किया कि वे नए बैंक खातों के जरिए अवैध ऑनलाइन सट्टा खिलाते थे। पुलिस ने मामले में धारा 34 और सट्टा अधिनियम की धारा 4(क) भी जोड़ी है।

रीवा-सिंगरौली स्लीपर बस पलटी, 40 यात्री घायल

मीडिया ऑडीटर, सिंगरौली (निप्र)। रीवा से सिंगरौली जा रही राधा वल्लभ ट्रांसपोर्ट की स्लीपर बस अनियंत्रित होकर पलट गई। हादसे में 40 से ज्यादा यात्री घायल हुए। घायलों को विभिन्न अस्पतालों में भर्ती कराया गया है। घटना शुक्रवार-शनिवार की दरमियानी रात 1 बजे की है।

सरई थाना क्षेत्र के निगरी निवास के पास हादसा: बस रात 10 बजे रीवा से रवाना हुई थी और सुबह 6 बजे सिंगरौली पहुंचनी थी। हादसा सरई थाना क्षेत्र के निगरी निवास के पास गोपद नदी के निकट हुआ। घायल यात्री रविंद्र ने बताया कि हादसे के समय अधिकतर यात्री सो रहे थे। बस के पलटते ही चारों तरफ चीख-पुकार मच गई। कम घायल यात्रियों ने गंभीर घायलों को बाहर निकाला और पुलिस को सूचना दी।

गंभीर घायलों को सीधी रेफर किया गया: रविंद्र को अंदरूनी चोटें आईं हैं, जबकि उनकी बेटी सविता का हाथ फ्रैक्चर हो गया। सरई थाना प्रभारी जितेंद्र भदोरिया के अनुसार, गंभीर घायलों को सीधी रेफर किया गया है। पांच लोग निगरी निवास स्वास्थ्य केंद्र में भर्ती हैं, जो खतरे से बाहर हैं।

ड्राइवर को झपकी आने से हादसे की आशंका: घटनास्थल पर सिंगरौली और सीधी दोनों जिलों की पुलिस पहुंची। प्रारंभिक जांच में ड्राइवर को झपकी आने की आशंका जताई गई है। हादसे में बस ड्राइवर और कंडक्टर भी घायल हुए हैं। पुलिस मामले की जांच कर रही है।

गुलाब सागर संकुल स्तरीय संगठन छुही में सक्षम केंद्र की स्थापना

मीडिया ऑडीटर, सीधी (निप्र)। मध्य प्रदेश राज्य ग्रामीण आजीविका मिशन के निर्देशानुसार पुष्पेंद्र सिंह जिला परियोजना प्रबंधक के मार्गदर्शन में गुलाब सागर संकुल स्तरीय संगठन छुही में सक्षम केंद्र की स्थापना जनपद सदस्य रानू सिंह एवं सुनीता विश्वकर्मा संकुल संगठन के अध्यक्ष की उपस्थिति में किया गया। सक्षम केंद्र के माध्यम से आयुष्मान योजना बीमा संबंधी योजना राशि का लेनदेन एवं समस्त प्रकार की बैंक संबंधी जानकारी एक ही मंच के माध्यम से प्रदान की जाएगी। गुलाब सागर संकुल स्तरीय संगठन में लोग आकर बैंक संबंधी लेन-देन भी करेंगे एवं बैंक से संबंधित जो भी समस्याएं हैं उसका आदान-प्रदान करेंगे। ऑनलाइन से संबंधित काम, जो शासन की विभिन्न सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं में काम आते हैं, वह सभी काम सक्षम केंद्र से होंगे। ई-केवाईसी का काम भी सक्षम केंद्र के माध्यम से संचालित किया जाएगा। सक्षम केंद्र का संचालन सूर्यवती कुशवाहा भारती एवं कल्पना पनिका के द्वारा यह सुविधा संकुल स्तरीय संगठन कार्यालय छूही विकासखंड मझौली में उपलब्ध होंगे। उक्त कार्यक्रम का संपूर्ण संचालन विकासखंड प्रबंधक चंद्रकांत सिंह एवं सहायक विकासखंड प्रबंधक अरुण गौतम के द्वारा कराया गया। शुभारंभ अवसर पर स्व सहायता समूह के सदस्य एवं संकुल स्तरीय संगठन के पदाधिकारी उपस्थित थे।

स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों को स्मरण कर मनाया गया स्वतंत्रता दिवस

मीडिया ऑडीटर, सतना (निप्र)। सुदर्शन पब्लिक हायर सेकेंडरी स्कूल आचार्य विनोबा भावे वार्ड सतना में आजादी का 79 वा स्वतंत्रता दिवस अमर शहीदों एवं वीर वीरांगनाओं को स्मरण कर मनाया गया स्वतंत्रता दिवस समारोह का शुभारंभ कार्यक्रम के मुख्य अतिथि केशव तिवारी (एडिटर विशाल खबर सतना) एवं विशिष्ट अतिथि राम मूर्ति सिंह (पूर्व प्लाटून कमांडर बीएसएफ) के कर कमलों से ध्वजारोहण कर किया गया। इस अवसर पर विद्यालय के संचालक राजकुमार कुशवाहा, संचालिका सुनीता कुशवाहा प्राचार्य सुखेंद्र सिंह, प्रबंधक अंशुल कुशवाहा, सहित समस्त विद्यालय परिवार ने ध्वजारोहण उपरांत तिरंगे झंडे को सलामी देकर राष्ट्रगान गायन करके कार्यक्रम का शुभारंभ किया। राष्ट्रगान उपरांत सरस्वती वंदना द्वारा विद्यार्थियों ने वीणापाणि मां सरस्वती का स्मरण करते हुए कार्यक्रम को आगे की गति प्रदान की ,विद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा स्वागत गीत के माध्यम से अतिथियों एवं अभिभावकों का स्वागत किया गया।

कन्या महाविद्यालय में जोश और उत्साह से मनाया गया देश की आजादी का पर्व

मीडिया ऑडीटर, सीधी (निप्र)। शासकीय कन्या महाविद्यालय सीधी में 79 वें स्वतंत्रता दिवस समारोह कार्यक्रम प्राचार्य प्रो ओमप्रकाश नामदेव, डॉ देवेन्द्र कुमार सोनी, डॉ नागेन्द्र सिंह, डॉ राजेश साहू, डॉ प्रतिमा कौल, डॉ दीप्ती सिंह महाविद्यालय के समस्त प्राध्यापक अधिकारी, कर्मचारियों एवं छात्राओं की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। ध्वजारोहण महाविद्यालय के प्राचार्य द्वारा किया गया। ध्वजारोहण उपरांत राष्ट्रगान गायन हुआ। ऐ मेरे वतन के लोगो जरा आंख में भर लो पानी, जो शहीद हुए हैं उनकी ज़रा याद करो कुर्बानी, जैसे देशभक्ति पूर्ण गीतों के माध्यम से अमर शहीदों को याद करते हुए श्रद्धांजलि दी गई। प्राचार्य ने मुख्यमंत्री का संदेश पढ़कर सुनाया।

अपने उद्बोधन में उन्होंने कहा कि आज हमारी युवा पीढ़ी ज़रा सी बात से गुमराह जल्दी हो जाती है। हमें सचेत रहकर , सोच समझकर अपनी मंजिल तय करनी है। डॉ राजेश कुमार साहू ने कहा कि विदेशियों ने 200 वर्ष तक हमारे देश पर शासन किया। देश के अमर बलिदानियों ने अपना बलिदान देकर इस देश को आजाद कराया। इस आजादी की हिफाज़त हम सब की जिम्मेदारी है। हिन्दी के विभागाध्यक्ष डॉ नागेन्द्र सिंह ने ऐतिहासिक घटनाओं का जिक्र करते हुए कहा कि मुट्ठी भर लोगों ने सम्पूर्ण आर्यावर्त में आधिपत्य स्थापित किया। फूट डालो और शासन करो और विलय नीति के माध्यम से हमें जातियों, वर्गों, समुदाय और सम्प्रदाय में बांटकर कमजोर करने की कलुषित नीति का अंत आज के दिन ही 79 वर्ष पहले हुआ था। अनेकता में एकता वाली इस भारत भूमि को समन्वय भावना की डोर से बांधे रखना है। कितनी ही विषम परिस्थिति आए हमें मिल कर उन परिस्थितियों का सामना करना है। डॉ विजय कुमार अहिरवार ने शहीदों का स्मरण करते हुए कहा कि जब जब देश पर संकट के बादल मंडराये तब तब कोई भगतसिंह, कोई शिवाजी, कोई महाराणा प्रताप सूर्य बनकर तम मिटाने के लिए प्रकट हुए हैं। तब जाकर आजादी का नया सबेरा हुआ है।

बलरामपुर गैंगरेप मूक-बधिर महिला के साथ दरिंदगी, योगी सरकार की कानून-व्यवस्था पर बड़ा सवाल

संपादकीय

उत्तर प्रदेश में बेहतर कानून व्यवस्था के दावों की कलई उस समय फिर खुली, जब बलरामपुर जिले में एक मूक-बधिर महिला से सामूहिक बलात्कार किया गया और उसे बेहोशी की हालत में पुलिस चौकी से कुछ दूर छोड़ दिया गया। सवाल है कि राज्य में अपराधियों का दुस्साहस इस हद तक क्यों बढ़ रहा है कि उनके भीतर किसी का खौफ नहीं दिख रहा। महिलाओं के खिलाफ जिस तरह अपराध बढ़े हैं, उससे पुलिस की कथित सख्ती और न्यूनतम अपराध के सरकारी दावों की स्याह तस्वीर सामने आई है।

सत्ता में आने के बाद मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ ने 'एंटी रोमियो दस्ते' का गठन किया था। मगर जमीन पर हकीकत क्या रही, यह जगजाहिर है। स्कूल जातीं और घर लौटतीं छात्राओं से छेड़खानी की वारदात बढ़ती ही चली गईं। कुछ मामलों में तो बेखौफ अपराधियों ने लड़कियों को सरेआम अगवा किया। बलरामपुर में भाई के घर से लौटती मूक-बधिर महिला को भी बीच रास्ते से उठाया गया। इससे पहले पीड़िता आरोपियों से बचने के लिए बदहवास भागती रही, लेकिन उसकी मदद करने वाला वहां कोई नहीं था।

घटना के दो दिन बाद बेशक आरोपियों को मुठभेड़ के बाद गिरफ्तार कर लिया गया हो, लेकिन यह घटना बताती है कि राज्य में महिलाएं किस कदर असुरक्षित हैं।

इसे बर्बरता की पराकाष्ठा ही कहेंगे कि आरोपियों ने एक ऐसी महिला को निशाना बनाया जो शोर मचा कर अपना बचाव तक नहीं कर सकती थी, किसी को अपनी पीड़ा नहीं बता सकती थी। इस घटना ने एकबारगी दिल्ली में निर्भया से हुई बर्बरता की इंतिहा की याद दिला दी। यह समझना मुश्किल है कि उस घटना के बाद देश भर में लोगों के बीच महिलाओं के खिलाफ होने वाले अपराधों पर उभरे आक्रोश का हासिल क्या रहा।

राष्ट्रीय अपराध रेकार्ड ब्यूरो के 2022 के आंकड़े ही उत्तर प्रदेश में बढ़ते अपराध की सच्चाई बताते हैं। आज यहां महिलाएं खुद को असुरक्षित महसूस करती हैं, तो इसकी एक वजह सड़कों पर पुलिस की गश्त का कम होना है। कुछ घटनाओं के आरोपियों को पकड़ा जाता है, आरोपपत्र भी दाखिल होते दिख रहे हैं, लेकिन सच यह है कि तमाम सरकारी दावों के बावजूद महिलाओं के खिलाफ होने वाले जघन्य अपराधों की तस्वीर बेहद चिंताजनक है।

जनाब, ये गलियारों की बात है

मृदुला श्रीवास्तव

आपने कभी सोचा है गलियारों का भी अपना एक दर्शन होता है। गलियारे की बात करते ही ग्रुप में गप्पें मारते, रंग-बिरंगे कपड़ों या फिर एक जैसी यूनिफार्म में लिपटे स्कूल के बच्चे या दफ्तर के कर्मचारी, कैंटीन से निकलते सौंफ चबाते नजरों के सामने घूमने लगते हैं। गलियारे दफ्तर में ही नहीं, स्कूल-कॉलेजों में भी होते हैं, अस्पतालों, अदालतों और मॉल्स में भी, हमारी जिंदगी के साथ-साथ जी हां, एक ख़तरनाक जगह और भी। ज्स्कूल और दफ्तर के इन्हीं गलियारों में से होकर गुजरते हैं कई दर्द, कई खामोशियां, कई-कई तनहाइयां, कई हंसी-ठट्ठे, कई टूटते-बिगड़ते सपने या फिर कई दबे-कुचले, कई उबाल खाते कर्मचारी या फिर एक-दूसरे से ग्रेड और अंकों की दौड़ लगाते प्रतिस्पर्धा और ईर्ष्या से भरे बच्चे। इन गलियारों में ही तय हो जाती हैं, न जाने कितनी ही रणनीतियां, कई साजिशें, कई स्टैंडिंग आयोजन, संगोष्ठी और यहां तक कि कई कवि सम्मेलन भी। ज्अस्पतालों, अदालतों के संकरे गलियारों में तो कई बार कई गहन केस तक सुलझा लिए जाते हैं और कई केसों की फाइलों के चेहरे तक बिगाड़ दिए जाते हैं। इन गलियारों में बस एक ही काम नहीं होता। वह है काम। काम, जिसके लिए हम तनख्वाह लेते हैं या फीस देते हैं। राजनीति के नॉन-स्किड-फर्श वाले इन गलियारों में गिरने से शायद ही कोई बच पाया हो। ज्जनाब गलियारों में ही कई दिल जुड़ते हैं और कई दिल टूटते भी हैं। गलियारों में से ही कई दर्द की दवाएं और क्रेप बैंडेज की-सी कसावट लिए असहनीय दर्द को दबाती युवा-दिलों की हंसी भी गुजरती है।

इन गलियारों में ही कई सांप, बिच्छू, भेड़िए, लोमड़ियां, मासूम गिनी-पिग और हाथी का सा शरीर ही नहीं, दिमाग लिए हमारे बच्चे, हम कर्मचारी और नागरिक भी घूमते हैं। ज्अपनी सीट से उठकर कुछ करने और कुछ भी न करने की आदत से मजबूर इन गलियारों में हम कर्मचारी और तथाकथित सभ्य नागरिक लोग अपनी दो-तिहाई ज़िंदगी गुज़ार देते हैं और हम समझते रहते हैं कि हमने अपनी पूरी ज़िंदगी अपने पद की सीट पर और अपने दफ्तर के कमरों में या फिर स्कूल में टीचरी कर देश की सेवा की है और हम मज़े से रिटायर भी हो जाते हैं। ज्जिस दिन हम रिटायर होते हैं, विदा होते हैं अपने स्कूल से या दफ्तर से, हम सोचते हैं हम अपने पद से ही तो रिटायर हो रहे हैं। दरअसल ये गलियारे, ये बरामदे ही हमें विदाई दे रहे होते हैं जिनसे गुजरते हमने न जाने कितने ही सपने बुने थे, न जाने कितने ही सपने इन्हीं गलियारों में टूटे थे। हमने अपना दुख कभी कहीं, कभी कहीं, ग्रुप में, इन्हीं गलियारों के आंचल की छांव में खड़े होकर ही तो बांटा था। ज्गलियारे कभी खत्म नहीं होते। फिर चाहे भीड़ भरे ये गलियारे किसी मेगामार्ट के, मॉल के हों या फिर हमारी अपनी ज़िंदगी के। ढेर सारे शॉपिंग के ब्रांडेड पैकेट हाथ में संभाले भी हम इन्हीं गलियारों में खुद को कभी-कभी कितना अकेला महसूस करते हैं। ज मित्रो! गलियारों का भी अपना एक संसार है। दरअसल गलियारों को समझने के लिए हमें खुद भी एक गलियारा बनना पड़ेगा। हमारी ज़िंदगी तक इन गलियारों के बिना अधूरी है। चूंकि हमारी जिंदगी खुद एक गलियारा है। सुख और दुख के फर्श से निर्मित। जिस प्रकार गलियारों के बिना किसी भी संस्थान या भवन का निर्माण संभव नहीं होता, ठीक उसी तरह हमारी ज़िंदगी भी भावनाओं-संवेदनाओं, मर्म-तर्क, कुतर्क-वितर्क के इन वैचारिक गलियारों के बिना पूर्ण नहीं हैं। ज्अभी बस इतना ही। संसद के और नेताओं के विशाल सोने की पैंटिंग्स से सजे भवनों के ख़तरनाक गलियारों की बात फिर कभी। अभी आप चुपचाप मुंह पर अंगुली रख कर बस पंद्रह अगस्त मनाइए।

प्रकृति की विविधता ही उसकी विशेषता है। चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणी का अपना वैशिष्ट्य होता है। यह वैशिष्ट्य ही उसका ÷स्व÷ होता है जो स्थानीय जल, वायु और धरती की गुणधर्मिता के आधार पर आकार लेता है। इसीलिए हर क्षेत्र के निवासियों के रूप, रंग प्रतिभा और स्वभाव अलग सब होता है। यह अंतर केवल रंग, रूप, आकार, प्रकार में ही नहीं, चित्त, वृत्ति, प्रतिभा और स्वभाव में भी होता है। इसीलिये संसार के प्रत्येक देश अपनी प्राथमिकता और जीवन शैली होती है। जो उसे दूसरों अलग और विशिष्ट बनाती है। किसी क्षेत्र अथवा भूमि के विशिष्ट भाग के निवासियों के यह केन्द्रीभूत स्व की चेतना ही उस राष्ट्र का स्व होती है।

स्वतंत्रता के अर्थ के अनुरूप राष्ट्र जीवन और 'स्व' आधारित 'तंत्र' भी आवश्यक

रमेश शर्मा

भारत से विदेशी सत्ता को विदा हुये 78 वर्ष हो गये। अब हम पुनः विश्व में सर्वश्रेष्ठ स्थान अर्जित करने की ओर बढ़ रहे हैं। हमारी उपलब्धियों की वास्तविक सार्थकता तब होगी, जब हमारा संपूर्ण समाज और राष्ट्र जीवन स्वदेशी की वास्तविक अवधारणा के अनुरूप होगा।

प्रकृति की विविधता ही उसकी विशेषता है। चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणी का अपना वैशिष्ट्य होता है। यह वैशिष्ट्य ही उसका ÷स्व÷ होता है जो स्थानीय जल, वायु और धरती की गुणधर्मिता के आधार पर आकार लेता है। इसीलिए हर क्षेत्र के निवासियों के रूप, रंग प्रतिभा और स्वभाव अलग सब होता है। यह अंतर केवल रंग, रूप, आकार, प्रकार में ही नहीं, चित्त, वृत्ति, प्रतिभा और स्वभाव में भी होता है। इसीलिये संसार के प्रत्येक देश अपनी प्राथमिकता और जीवन शैली होती है। जो उसे दूसरों अलग और विशिष्ट बनाती है। किसी क्षेत्र अथवा भूमि के विशिष्ट भाग के निवासियों के यह केन्द्रीभूत ÷स्व÷ की चेतना ही उस राष्ट्र का ÷स्व÷ होती है। जो उस राष्ट्र के समाज जीवन में झलकती है। जो व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र के विकास में विशिष्ट ऊर्जा प्रदान करती है। ÷स्व÷ की इस विशिष्टता के आधार पर ही भारत विश्वगुरु और सोने की चिड़िया रहा है। विश्वगुरु अर्थात ज्ञान विज्ञान में सर्वश्रेष्ठ और सोने की चिड़िया अर्थात सर्व संपन्न समाज और देश। इन दोनों विशेषताओं ने ही संसार को भारत की ओर आकर्षित किया। ज्ञानार्जन की जिज्ञासा लेकर भी विद्वतजन भारत आये और धन की लालसा से लुटेरे और व्यापारी आये। यह ठीक है कि तत्कालीन समाज और राजनयिकों के असंगठन और अदूरदर्शिता से भारत दासानुदास बन गया था। लेकिन दासत्व के घोर अंधकार के बीच भी भारतत्व सुरक्षित रहा तो ÷स्व÷ की शक्ति से ही। और जब स्व के अनुरूप किसी राष्ट्र का प्रशासन तंत्र आकार लेता है तो उसे ÷स्वतंत्र÷ कहते हैं। जिस प्रकार किसी राष्ट्र के समाज जीवन की भाषा, भूषा, भोजन, भजन और भ्रमण की पसंद में उसके स्व की झलक होती है। उसी प्रकार उस राष्ट्र की शिक्षा प्रणाली, चिकित्सा पद्धति, न्याय प्रक्रिया और प्रशासनिक व्यवस्था भी विशिष्ट होती है। भारत की ये प्रणालियां अति विशिष्ट रहीं हैं जो उस व्यक्ति विशिष्ट के ÷स्व÷ के आधार पर ही आरोहित किया जाता था।

पश्चिम और भारत की इन प्रणालियों में एक आधारभूत अंतर है। पश्चिमी जगत में शिक्षा, चिकित्सा, न्याय और प्रशासन पद्धति स्वत्व के आधार पर नहीं होती। उनकी समस्त प्रणालियाँ व्यवसायिक और सत्ता के संचालन के लिये है। जबकि भारत में इन व्यवस्थाओं के केन्द्र में ÷स्वत्व÷ है। इन सब प्रणालियों में व्यैक्तिक विशिष्टता के आधार पर व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र का निर्माण होता है। 15 अगस्त 1947 के बाद भारतीय सत्ता से अंग्रेजों की विदाई तो हुई लेकिन उनके द्वारा आरंभ सभी वयवस्थाएँ यथावत रहीं। हम कहने केलिये तो स्वतंत्र बने। लेकिन यह स्वतंत्रता की पूर्णता नहीं है। स्वतंत्रता की पूर्णतः राष्ट्र संचालन और भविष्य के निर्माण के लिये ÷स्व÷ आधारित व्यवस्था भी होना चाहिए।

भारत की शिक्षा प्रणाली: भारत में अंग्रेजों द्वारा आरंभ की जाने वाली शिक्षा प्रणाली का उदेश्य व्यक्तित्व निर्माण नहीं था। वे अपनी शिक्षा प्रणाली से भारत में सत्ता की सेवक और सहायक तैयार करते थे। यह ठीक है कि उन दिनों पाश्चात्य शिक्षा से लेकर भी कुछ लोग स्वतंत्रता संग्राम से जुड़े लेकिन ये सभी वे लोग थे जिनके परिवारों के आंतरिक वातावरण में स्वत्व का वोध था, लेकिन अंग्रेजों के जाने के बाद भी वही शिक्षा नीति यथावत रही। इसलिए डिग्री लेकर निकलने वाले युवा में आत्मविकास और आत्मनिर्भर व्यक्तित्व निर्माण नहीं होता। वह ÷नौकरी÷ की तलाश में निकलता है। मीडिया में ऐसे समाचार अक्सर पढ़ने को मिलते हैं कि किसी कार्यालय में चपरासी के दो चार पद केलिये भी हजारों आवेदन पहुँच जाते हैं इनमें इंजीनियर, वकील आदि के डिग्रीधारी भी होते हैं। जबकि भारतीय शिक्षा पद्धति, वह विद्यालय की हो अथवा गुरुकुल की। वहाँ से शिक्षित होकर निकला युवा आत्मनिर्भर होता था। भारतीय गुरुकुल की शिक्षा प्रकृति के उस आधारभूत सिद्धांत के आधार पर होती थी कि चींटी से लेकर हाथी तक सभी प्राणी अपना भोजन, निवास केलिये सुरक्षित स्थान और अपना जीवनसाथी स्वयं तलाश लेते हैं। भारतीय शिक्षा व्यवस्था में आत्मनिर्भरता के इन्हीं गुणों का विकास होता है। जिसमें सोलह प्रकार की विद्या एवं चौंसठ प्रकार की कला का ज्ञान लेकर निकला युवा आत्मनिर्भर होता था। और अपने ज्ञान से संसार को आलोकित करता था।

एक ओर भारत प्रगति के नये आयाम छू रहा है तो दूसरी ओर रोगों के नये नये नाम भी सामने आ रहे हैं। उपचार इतना मंहगा है कि मध्यम वर्गीय परिवारों की मानों कमर ही टूट रही है। सरकार का बजट भी बढ़ रहा है लेकिन रोग कम होने की बजाय बढ़ रहे हैं। इसका कारण भी पश्चिमी जीवन और उपचार पद्धति है। शिक्षा सिद्धांत की भाँति चिकित्सा प्रणाली में भी भारत और पश्चिमी चिकित्सा शैली में आधारभूत अंतर है। पश्चिमी चिकित्सा पद्धति रोगोपचार तक सीमित होती है। जबकि भारतीय चिकित्सा शास्त्र शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक आरोग्य को आध्यात्म से जोड़ता है। भारतीय चिकित्सा प्रणाली ऐसी जीवनशैली पर जोर देती है जिसमें रोग आये ही नहीं। इसे आरोग्य कहा गया है। प्रकृति के समन्वय के बनाकर जीने से ही आरोग्य संभव होता है। इसमें प्रातः उठने से लेकर रात्रि शयन तक की दिनचर्या निर्धारित है। योग और व्यायाम भी स्वास्थ्य से जोड़ा गया है। किस ऋतु में कौनसा भोजन करना, कौनसा नहीं करना यह भी चिकित्सा शास्त्र में वर्णन हैं। इससे व्यक्ति रोग से दूर रहता है। और यदि रोग होता है तो उसका उपचार और ऐसी औषधि दी जाती है जिससे शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। ये औषधियाँ भी प्राकृतिक उत्पाद पर निर्भर होती हैं जो एक ओर सस्ती भी होती हैं और दूसरी ओर इनका ÷रिएक्शन÷ नहीं होता। पश्चिमी पद्धति की अधिकांश औषधियों का ÷रियक्शन÷ होता है जिससे किसी नये रोग की आशंका उत्पन्न हो जाती है। अब पूरी दुनियाँ भारतीय चिकित्सा पद्धति के सिद्धांत पर शोध कर रही है। लेकिन भारत के सामाजिक वातावरण में आज भी पश्चिमी चिकित्सा पद्धति का प्रभाव है। किसी भी परिवार, समाज और राष्ट्र की उन्नति में योगदान वही व्यक्ति दे सकता है जो शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक रूप से सामर्थ्यवान हो। समृद्ध स्वास्थ्य का चिंतन भारतीय चिकित्सा शास्त्र में ही है। इसके प्रति जागरुकता आवश्यक है।

÷स्व÷ आधारित न्याय व्यवस्था: राष्ट्र के परम् वैभव का प्रथम सूत्र समाज की शाँति और समन्वय में है। जो एक ऐसी समाज व्यवस्था से संभव होगा जो ÷न्यूनतम अपराध÷ और ÷उच्चतम न्याय÷ पर आधारित होती हो। यह तभी संभव है जब न्याय सुलभ और सहज हो। भारतीय न्याय व्यवस्था पूरे संसार में उत्कृष्ट और श्रेष्ठ रही है। इतनी श्रेष्ठ जहाँ अपराध का स्तर लगभग शून्य प्रतिशत के आसपास था। घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे। बेटियाँ अपनी संग सहेलियों के साथ आधी रात को भी बिना भय के निकल सकतीं थीं। तब भारतीय न्याय व्यवस्था तीन स्तरीय हुआ करती थी। पहली सामाजिक, दूसरी स्थानीय और तीसरी राज स्तरीय। इसका आधार सामाजिक और सांस्कृतिक दोनों प्रकार का होता था। किसी घटना के सामने आते ही सबसे पहले सामाजिक स्तर पर उसका निराकरण हो जाता था। स्थानीय स्तर की घटना पर पंचायत स्तर निराकरण हो जाता था। यह इतना त्वरित हो जाता था कि अपराधी को बचने के रास्ते नहीं मिल पाते थे और पीड़ित भी संतुष्ट हो जाता था जिससे समाज की विकास यात्रा निर्वाध रहती थी। लेकिन अंग्रेजों की भारत से विदाई के बावजूद उनकी न्याय व्यवस्था की विदाई नहीं हुई उसे ही आदर्श मानकर यथावत रखा गया। पाश्चात्य न्याय व्यवस्था इतनी घुमावदार है कि उसमें त्वरित न्याय नहीं होता। भारत के विभिन्न न्यायालयों में लगभग पाँच करोड़ प्रकरण लंबित हैं। इनमें अठारह लाख प्रकरण तो ऐसे हैं जो तीस वर्ष से अधिक समय से लंबित हैं। कितने भी पीड़ित न्याय की आस में दुनियाँ से विदा हो गये। और अपराधी ठाट के साथ जीते रहे। यह न्याय में विलंब का कारण है भारत में अपराध का आँकड़ा निरन्तर बढ़ रहा है।

स्वतंत्रता की सार्थकता ÷स्व÷ की संपूर्णता में है। यदि सत्ता स्वदेशी है तो तंत्रशैली भी स्वदेशी होना चाहिए। इसके लिये शिक्षा, चिकित्सा, न्याय और प्रशासनिक धारा का पूर्ण स्वरूप ÷स्व÷ आधारित ही होना चाहिए। तभी भारत की स्वतंत्रता सार्थक होगी और पुनः उसी श्रेष्ठ स्थान पर पहुँच सकेगा जहाँ अतीत में कभी रहा है।

जागते रहो की भटकी आवाज

गलत नतीजा बता क्या हम ऐसी दुनिया की बात कर रह हैं, जिससे गणित पढना गुनाह है, या किसी उस दुनिया की बात जिसमें इतिहास के नाम पर भूगोल पढ़ा दिया जाता है। उसके बाद किसी फर्जी विश्वविद्यालय की उच्च डिग्री का दुमछल्ला लगा लो। भाषण करने लगो तो अपनी वक्तृता में दस बार अपने नाम का प्रयोग करने के बाद कहो कि 'मैं तो बेचारा एक कार्यकर्त्ता हूं, आपकी जिंदगी सफल करने के लिए इस धरती पर आया हूं।'

सुरेश सेठ

हमारी न्यायपीठ के एक मुखिया को चंद साल पहले इस देश में एक साथ दो दुनिया बसती नजर आई थीं। एक वह दुनिया जिसमें सात बीस का सौ होता है, और दूसरी वह दुनिया जिससे आठ बीस का पचास भी नहीं होता। गलत नतीजा बता क्या हम ऐसी दुनिया की बात कर रह हैं, जिससे गणित पढना गुनाह है, या किसी उस दुनिया की बात जिसमें इतिहास के नाम पर भूगोल पढ़ा दिया जाता है। उसके बाद किसी फर्जी विश्वविद्यालय की उच्च डिग्री का दुमछल्ला लगा लो। भाषण करने लगो तो अपनी वक्तृता में दस बार अपने नाम का प्रयोग करने के बाद कहो कि 'मैं तो बेचारा एक कार्यकर्त्ता हूं, आपकी जिंदगी सफल करने के लिए इस धरती पर आया हूं।' जी हां, जो ऊंचे प्रासादों से अवतरित होते हैं, उनके लिए कानूनों की आचार संहिता कुछ और, और इधर बेचारे फुटपाथियों के लिए कानून की सख्ती का कोई अंत नहीं। न्यायपीठ ने तो कहा इस देश में हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग कानून नहीं हो सकता। साब, हम आह भी भरें तो हो जाते है बदनाम, वह कत्ल भी करें तो शिकवा नहीं होता। लगता है ये कानून सदा से दो रुख वाले ही चलते आए हैं। आज उनका संज्ञान ले लिया गया तो कहने लगे, 'आह कितनी बेबाक टिप्पणी है। इस साहस के लिए जिंदाबाद।' लेकिन क्या जिंदाबाद

का नारा लगाने के बाद दो अलग वर्गों के लिए एक ही कानून हो जाएगा। यह कानून बड़े-छोटे का, ऊंचे-नीचे का फर्क नहीं करेगा। सबकी धान पसेटी एक ही भाव बिकेगी। लेकिन ऐसा कभी होना नहीं। ऐसी समता की मात्र उम्मीद की जा सकती है, ऐसी उम्मीद जो करने वाले भी अपने ऊंचे मंच पर खड़े होकर जनता जनार्दन को समझा सकें। लेकिन मंच से बोलता हुआ आदमी ऊंचे स्वर में बोलता रहता है, और धरती पर छिटके हुए लोग गिड़गिड़ाते तक एक अंदाज से हैं। मंच से उतरे आदमी के पांव पखारते हैं, वह भी एक अंदाज से। उन्होंने कहा कि बड़े और छोटे का फर्क तो सदा से रहा है।

कुछ साल पहले जब महामारी आयी तो लाखों लोग अस्पताल में बैड न मिलने से चल बसे, और चंद लोग अपनी ऊंची मंजिलों से गुरु गंभीर वाणी में हमदर्दी प्रकट करते हुए जनसेवक कहलाए। भुखमरी सूचकांक आ गया, लेकिन विज्ञ पुरुषों ने बताया, 'देखो-देखो अपने यहां भुखमरी से इतने नहीं मरे, जितनी उम्मीद थी।' आंकड़ों का खेल है, इसकी कल मरोड़ दो, तो लगता है जब इतने लोग मरे ही नहीं, तो कैसे कह सकते हो देश बदहाल है, असमाजवादी है। अब इन टिप्पणियों का क्या करें? टिप्पणी करने वाले टिप्पणी करते रहते हैं, और फुटपाथ पर बरसों से पड़े आदमी जिंदाबाद का जयघोष करते हुए देश की तरक्की के जामिन हो जाते हैं। अब ऐसी भी क्या विसंगति कि मरीजों की परिचर्चा करने वाले, उन्हें मौत के मुंह से बाहर निकाल लेने वाले संपदा व्यवसायी कहलाएं? भला ये लोग कमाई नहीं करेंगे तो ये अस्पताल दो मंजिलों से चार मंजिल कैसे बनेंगे? मंजिलें उठेंगी, तो रोगियों के लिए नए कमरे बनेंगे। जानते हो, देश में अत्यधिक जनसंख्या की समस्या है। अस्पतालों के भवन तरक्की नहीं करेंगे, तो लोगों की जान कैसे बचेगी? मानवता के इन पुजारियों को संपदा व्यवसायी न कहो। इन्होंने मेहनत का अधिक मूल्य ले लिया, औषधियों को काला बाजार में बेच दिया, तो उनकी मानवता की पूजा में कोई अंतर कैसे आ गया? देख लो यहां भी दो दुनिया हो गयी। एक दुनिया में मानवता की पूजा के ताज बंटते हैं, और दूसरी में काले बाजार के शहजादे दनदनाते हैं। आओ, यह गरीब, अमीर का फर्क करना बंद कर दें। सदियों से गरीब, गरीब न रहे होते, तो शब्दकोष में सेवाभाव को इतना ऊंचा दर्जा कैसे मिलता।

राज्यपाल डेका ने नागालैण्ड के राज्यपाल गणेशन को दी श्रद्धांजलि

रायपुर। राज्यपाल रमेन डेका ने 16 अगस्त को राजभवन में नागालैण्ड के राज्यपाल ला. गणेशन अय्यर को श्रद्धांजलि अर्पित की। गणेशन का विगत दिवस निधन हो गया था।राज्यपाल डेका ने श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए कहा कि गणेशन ने मणिपुर, पश्चिम बंगाल और नागालैंड के राज्यपाल के रूप में अपनी सेवाएँ दीं। ला. गणेशन का राजनीतिक जीवन केवल पदों तक सीमित नहीं था, बल्कि यह सेवा, ईमानदारी और राष्ट्रहित के प्रति अटूट निष्ठा का प्रतीक था। वे जनसंपर्क में सहज, व्यवहार में विनम्र और निर्णयों में दृढ़ थे। अपने लंबे सार्वजनिक जीवन में उन्होंने हमेशा राष्ट्रहित को सर्वोपरि रखा। राज्यपाल ने दिवंगत आत्मा की शांति की प्रार्थना करते हुए उनके शोकसंतप्त परिजनों के प्रति गहन संवेदना व्यक्त की है।गणेशन का जन्म 16 फ़रवरी सन् 1945 को हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में अनेक महत्वपूर्ण दायित्वों का निर्वहन किया। 20 फ़रवरी 2023 से नागालैंड के राज्यपाल के रूप में उनका कार्यकाल उनके जीवन के अंतिम क्षणों तक रहा। इस अवसर पर राज्यपाल के सचिव डॉ. सी. आर प्रसन्ना, उप सचिव निधि साहू एवं राजभवन के अन्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भी पुष्पाजंलि अर्पित की।

प्रदेश में अब तक 713.2 मिमी औसत वर्षा दर्ज

रायपुर। छत्तीसगढ़ में 1 जून से अब तक 713.2 मिमी औसत वर्षा रिकार्ड की जा चुकी है। राजस्व एवं आपदा प्रबंधन विभाग द्वारा स्थापित राज्यस्तरीय बाढ़ नियंत्रण कक्ष से प्राप्त जानकारी के अनुसार प्रदेश में अब तक बलरामपुर जिले में सर्वाधिक 1140.5 मिमी वर्षा रिकार्ड की गई है। बेमेतरा जिले में सबसे कम 367.2 मिमी वर्षा दर्ज हुई है।रायपुर संभाग में रायपुर जिले में 630.7 मिमी, बलौदाबाजार में 571.1 मिमी, गरियाबंद में 601.5 मिमी, महासमुंद में 580.3 मिमी और धमतरी में 600.9 मिमी औसत वर्षा दर्ज हुई है।बिलासपुर संभाग में बिलासपुर जिले में 731.7 मिमी, मुंगेली में 742.7 मिमी, रायगढ़ में 854.0 मिमी, सारंगढ़-बिलाईगढ़ में 620.7 मिमी, जांजगीर-चांपा में 907.9 मिमी, सक्ती में 765.2 मिमी, कोरबा में 751.6 मिमी, गौरेला-पेण्ड्रा-मरवाही 678.0 मिमी औसत वर्षा दर्ज हुई है।दुर्ग संभाग में दुर्ग जिले में 566.9 मिमी, कबीरधाम में 531.2 मिमी, राजनांदगांव में 631.3 मिमी, मोहला-मानपुर-अंबागढ़ चौकी में 861.8 मिमी, खैरागढ़-छुईखदान-गंडई में 509.2 मिमी, बालोद में 721.4 मिमी औसत वर्षा दर्ज हुई है।सरगुजा संभाग में सरगुजा जिले में 530.9 मिमी, सूरजपुर में 865.0 मि.मी., जशपुर में 769.3 मिमी, कोरिया में 820.0 मिमी और मनेन्द्रगढ़-चिरमिरी-भरतपुर में 746.8 मिमी औसत वर्षा दर्ज हुई है।बस्तर संभाग में बस्तर जिले में 904.2 मिमी, कोंडागांव में 608.8 मिमी, कांकेर में 772.7 मिमी, नारायणपुर में 810.5 मिमी, दंतेवाड़ा में 815.5 मिमी, सुकमा में 625.1 मिमी, और बीजापुर में 901.5 मिमी औसत वर्षा रिकार्ड की जा चुकी है।

राज्यपाल डेका ने पूर्व प्रधानमंत्री बाजपेयी की पुण्यतिथि पर दी श्रद्धांजलि

रायपुर। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री भारत रत्न स्वर्गीय अटल बिहारी बाजपेयी की पुण्यतिथि पर आज राज्यपाल रमेन डेका ने उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। उन्होंने कहा कि बाजपेयी विराट व्यक्तित्व, महान वक्ता, जननायक होने के साथ-साथ सभी दलों के बीच सम्मानीय थे।राज्यपाल डेका ने कहा कि देश में सुशासन की स्थापना की दिशा मे बाजपेयी जी का योगदान अभूतपूर्व है। उनकी याद में हर वर्ष 25 दिसम्बर को सुशासन दिवस मनाया जाता है। भारत को विश्व पटल पर स्थापित करने के लिए श्री बाजपेयी के योगदान का उल्लेख करते हुए कहा कि विदेश एवं अंतर्राष्ट्रीय मंचो पर भारत का मजबूती से पक्ष रखकर उन्होंने देश का मान बढ़ाया।इस अवसर पर राज्यपाल के सचिव डॉ. सी.आर प्रसन्ना, उप सचिव निधि साहू एवं राजभवन के अन्य अधिकारियों एवं कर्मचारियों ने भी पुष्पार्जलि अर्पित की।

रायपुर में जन्माष्टमी की धूम...कान्हा के लिए 1100KG मालपुआ तैयार

रायपुर। छत्तीसगढ़ के रायपुर में कृष्ण जन्माष्टमी का उत्सव धूमधाम से मनाया जा रहा है। टाटीबंध स्थित इस्कॉन टेंपल में 3 दिन तक जन्माष्टमी महोत्सव चल रहा है। जैतूसाव मठ में भगवान को भोग लगाने के लिए 1100 किलो मालपुआ तैयार किया गया है। मठ में भजन संध्या, जन्म आरती कर राजभोग ठाकुरजी को लगाया जाएगा। वहीं, समता कॉलोनी स्थित श्री राधाकृष्ण मंदिर में सुबह दुग्धाभिषेक से अनुष्ठान की शुरुआत हुई। आज रात सिटी कोतवाली में जन्माष्टमी मनाई जाएगी। यहां कारागार में ठाकुरजी का जन्म होगा। वासुदेव टोकरी में उन्हें लेकर बाहर आएंगे। श्रीकृष्ण के जयकारे के बीच उन्हें सदर बाजार के गोपाल मंदिर लाया जाएगा।

जैतूसाव और दूधाधारी मठ में उत्सव : जैतूसाव मठ में उत्सव की जबरदस्त तैयारी चल रही है। मठ में मालपुआ बनाया गया है। आज भगवान को 11 क्विंटल मालपुए का भोग लगाया जाएगा। पुरानी बस्ती के श्री जैतुसाव मठ में शनिवार रात 8 बजे से भजन संध्या की शुरुआत होगी। रात 12 बजे जन्म आरती होगी।

21 अगस्त से पहले साय मंत्रिमंडल में 3 नए मंत्री, 2 संगठन एक RSS की पसंद का बनेगा; पुराने मंत्रियों की कुर्सी सुरक्षित

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। छत्तीसगढ़ में साय कैबिनेट के विस्तार को लेकर सियासी हलचल तेज है। संगठन के पदाधिकारियों ने संकेत दिए हैं कि, 21 अगस्त से पहले मंत्रिमंडल का विस्तार हो सकता है। पार्टी के शीर्ष नेतृत्व से ष्टरूविष्णुदेव साय को कैबिनेट विस्तार की हरी झंडी मिल चुकी है।बताया जा रहा है कि भाजपा का शीर्ष नेतृत्व 14 सदस्यीय मंत्रिमंडल बनाने पर सहमत हो चुका है। साय कैबिनेट में 2 संगठन और एक ऋस्स की पसंद का मंत्री आने वाले दिनों में शामिल होगा। वहीं, पुराने मंत्रियों की कुर्सी सुरक्षित रहेगी, उनके विभागों में कोई बदलाव नहीं होगा।दरअसल, मुख्यमंत्री विष्णुदेव साय 21 अगस्त को जापान और दक्षिण कोरिया की यात्रा पर रवाना होंगे। ऐसे में अनुमान है कि शपथ ग्रहण की प्रक्रिया अगले पांच दिनों में पूरी कर ली जाएगी। कैबिनेट विस्तार पर ष्टरूसाय ने कहा कि इंतजार करते रहिए, हो भी सकता है।

कैबिनेट में तीन नए चेहरे जुड़ेंगे : बीजेपी संगठन के पदाधिकारियों के अनुसार, संगठन विस्तार के दौरान तीन नेताओं को मंत्री पद की जिम्मेदारी दी जाएगी। इसमें सामाजिक और क्षेत्रीय संतुलन को प्राथमिकता दी जाएगी। अनुमान है कि एक मंत्री सामान्य वर्ग से, दूसरा अनुसूचित जनजाति से और तीसरा

पिछड़ा वर्ग से चुना जा सकता है। इसके साथ ही बिलासपुर, सरगुजा और दुर्ग संभाग से एक-एक मंत्री शामिल किए जाने की संभावना जताई जा रही है।

इन विधायकों में लगी मंत्री बनने की रेस : बिलासपुर विधायक अमर अग्रवाल, कुरुद विधायक अजय चंद्राकर, दुर्ग विधायक गजेंद्र यादव, अंबिकापुर विधायक राजेश अग्रवाल और आरंग विधायक गुरु खुशवंत साहेब का नाम आगे चल रहा है।इनमें से 3 लोगों को साय कैबिनेट में शामिल किया जा सकता है।

पुराने मंत्रियों की कुर्सी सुरक्षित : बीजेपी संगठन के अनुसार, नए मंत्रियों की कैबिनेट में एंट्री होगी, लेकिन मौजूदा मंत्रियों के विभाग या पद में कोई बदलाव नहीं किया जाएगा। इसका मतलब है कि वर्तमान टीम से किसी को बाहर नहीं किया जाएगा।हालांकि पिछले कुछ समय से राजनीतिक हलकों में लक्ष्मी राजवाड़े, दयालदास बघेल और टंकराम वर्मा को लेकर अटकलें चल रही थीं, लेकिन अब ऐसे संकेत दिखाई नहीं दे रहे हैं।

छत्तीसगढ़ के बस्तर, नारायणपुर, कांकेर जिलों में भारी बारिश का यलो अलर्ट

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। छत्तीसगढ़ में बंगाल की खाड़ी में बने नए सिस्टम के कारण मानसून फिर से सक्रिय हो गया है। राजधानी रायपुर में दिनभर की उमस के बाद बीती रात बादल गरजने के साथ तेज बारिश हुई, जिससे लोगों को राहत मिली। छत्तीसगढ़ में मौसम विभाग ने आज बस्तर, नारायणपुर, कांकेर इन तीन जिलों में भारी बारिश का यलो अलर्ट जारी किया है। वहीं रायपुर, बिलासपुर, दुर्ग, सरगुजा और बस्तर संभाग के जिलों में बिजली गिरने, बादल गरजने को लेकर यलो अलर्ट है।मौसम विभाग से मिली जानकारी के अनुसार, पिछले 24 घंटे में प्रदेश के सभी संभागों में मध्यम बारिश हुई है। दुर्ग और बस्तर संभाग के कुछ क्षेत्रों में भारी बारिश हुई है। वहीं शनिवार को भी प्रदेश का मौसम कुछ-कुछ ऐसा ही रहने की संभावना है। शुक्रवार की रात हुई बारिश के बाद मौसम विभाग ने शनिवार को राजधानी रायपुर समेत कई अन्य जिलों में भारी बारिश होने की संभवना जताई है। मौसम विभाग ने प्रदेश के अलग-अलग जिलों में भारी बारिश होने का अलर्ट जारी किया है।अगले एक सप्ताह तक ऐसी ही बनी रहेगी।वहीं लगातार हो रही बारिश से गरियाबंद जिले स्थित सिकासार बांध में जलस्तर बढ़ गया है। इस वक्त जलाशय में पानी 193.97 मीटर क्यूबिक तक पहुंच गया है।इस मानसून सीजन में पहली बार जलाशय 97.51 प्रतिशत भराव पर पहुंचा है।तटवर्ती गांवों में मुनादी कर अलर्ट जारी किया है। साथ ही ग्रामीणों से सतर्क रहने की अपील की जा रही है।रायपुर में शुक्रवार को प्रदेश में सर्वाधिक तापमान 33.1 डिग्री दर्ज की गई। वहीं सबसे कम तामपान राजनांदगांव का था, वहां का न्यूनतम 20 डिग्री सेल्सियस रहा। वहीं बिलासपुर का मौसम भी शुक्रवार को सामान्य बना रहा। बिलासपुर का अधिकतम तापमान 32.3 डिग्री रहा, न्यूनतम तापमान 26.6 डिग्री का रहा।

आजाद सोशल एंड स्पोर्ट क्लब में छोटे बच्चों ने किया ध्वजा रोहण

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। बाल समाज (श्री चंद्रशेखर आजाद स्मृत आजाद सोशल एंड स्पोर्ट्स क्लब) जोरापारा रायपुर में आज भारत के 79 वे स्वतंत्रता दिवस के उपलक्ष्य में समिति द्वारा छोटे छोटे बच्चों से ध्वजा रोहण करवाया गया सभी ने ध्वजा रोहण कर राष्ट्रीय गीत जन,गण,मन गाकर भारतमाता की जय,वंदे मातरम के नारे लगाए । सन् 1927 से शुरू हुई यह संस्था 2 वर्षों बाद सन् 2027 में अपने 100 वर्ष पूरे कर शताब्दी वर्ष मनाने जा रही है।

सब से महत्वपूर्ण बात यह की पिछले कई वर्षों में गणेश उत्सव,ध्वजा रोहण, पारम्परिक होलिका दहन जैसे महोत्सव ठीक उसी जगह आज भी किए जा रहा है जहां से 100 वर्ष पूर्व शुरू किए गए थे। सर्वप्रथम 1927 से यहां

पारम्परिक होलिका दहन होलिका माता एवं भक्त प्रह्लाद की प्रतिमा बैठा कर पारम्परिक तरीके से धार्मिक वातावरण में होलिका दहन की शुरुवात की गई।समिति की सभी परम्परा को सुचारू रूप से बनाए रखने के लिए समिति के सभी सदस्यों,नागरिकों,महिला मंडलों,युवाओं ने निरंतर अपना सहयोग प्रदान किया है । समिति द्वारा प्रतिवर्ष धार्मिक वातावण में गणेश उत्सव के साथ सांस्कृतिक कार्यक्रम भी धूम धाम से आयोजित किए जाते है।समिति के वरिष्ठ सदस्य श्री राजेंद्र कोल्हारकर एवं युवा सदस्य हितेश यादव (टीपू) ने बताया कि बाल समाज (आजाद सोशल एंड स्पोर्ट्स) क्लब की नींव 1927 में 100 वर्ष पूर्व स्व.राम लाल साहू स्व.बैकुंठ साहू स्व.जीवाजी सोनकामड़े स्व.रामदास शेंडे स्व.बृजलाल यादव स्व.संतोष पाण्डे स्व .केशवराव कोल्हारकर सभी ने मिलकर रखी थी।बाद मे सन 1979 को वरिष्ठ सदस्य राजेंद्र कोल्हारकर द्वारा स्वतंत्रता संग्राम में अहम भूमिका निभाने वाले श्री चंद्र शेखर आजाद जी के नाम से श्री चंद्र शेखर आजाद स्मृति आजाद सोशल एंड स्पोर्ट्स क्लब नाम दिया गया।अपने शताब्दी वर्ष के अवसर पर इस वर्ष से ही समिति गणेश उत्सव पर विशेष सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे। साथ ही 2027 में शताब्दी महामहोत्सव पर सभी पूर्व बाल समाज के संस्थापक सदस्यों के परिवारों जनों का सम्मान,समिति के सभी बुजुर्गों का सम्मान,आनंद मेला, पिछले 100 वर्षों की चलचित्र प्रदर्शनी,सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं अन्य कार्यक्रम आयोजित किए जाएंगे।

रायपुर में हेरोइन के साथ पकड़े गए 3 युवक:मुक्तिधाम के पास ग्राहक तलाश रहे थे

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। रायपुर पुलिस ने काशीनगर स्थित मुक्तिधाम के पास तीन युवकों को हेरोइन (चिट्टा) की तस्करी करते पकड़ा है। आरोपियों के पास से 6.30 ग्राम हेरोइन, एक इलेक्ट्रॉनिक तराजू, नगद बिक्री की रकम और तीन मोबाइल समेत कुल 1.20 लाख रुपए का माल जब्त किया गया है।पुलिस को सूचना मिली थी कि काशीनगर क्षेत्र में 3 संदिग्ध युवक हेरोइन बेचने के फिराक में ग्राहक तलाश रहे हैं। जिसके बाद आरोपियों को पकड़ने टीम गठित की गई। मुखबिर के बताए हुलिए के आधार पर तीन युवकों को पकड़ा गया।पूछताछ में उन्होंने अपना नाम अर्पित लाल मरकाम, मनीष राजपाल और नयन भाटिया (सभी निवासी रायपुर) बताया। तलाशी के दौरान तीनों के पास से हेरोइन (चिट्टा) बरामद किया गया।बता दें कि, पाकिस्तान की ड्रग्स रायपुर में बेचने वाले सिंडिकेट के आरोपियों के खिलाफ पुलिस ने जांच का दायरा बढ़ा दिया है। आरोपियों से ड्रग्स किस-किस ने खरीदा इसका पता लगाने के लिए पुलिस अधिकारी अब तकनीकी जांच कर रहे हैं।कंज्यूमर और सिंडिकेट के संपर्क में रहने वाले लोगों की पहचान करने में आसानी हो, इसलिए पुलिस अधिकारियों ने सिंडिकेट के अकाउंट में पैसे डालने वाले 350 लोगों का अकाउंट फ्रीज कराया है।

बीमारियों के उपचार में नई तकनीकों की अहम भूमिका : राज्यपाल डेका

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। राज्यपाल रमेन डेका ने कहा कि, सभ्यता के विकास के साथ-साथ बीमारियां भी बढ़ी हैं और जीवन शैली ने स्वास्थ्य पर गहरा असर डाला है। उन्होंने कहा कि बीमारियों का पता लगाने एवं उनके उपचार में एआई, रोबोटिक सर्जरी एवं अन्य नई तकनीकों की भूमिका आज बेहद महत्वपूर्ण हो गई है। राज्यपाल श्री डेका एम्स रायपुर में आयोजित नाक, कान गला (ईएनटी) रोग विशेषज्ञों के वार्षिक सम्मेलन में बतौर मुख्य अतिथि के रूप में उपस्थित थे।राज्यपाल ने कहा कि 15 अगस्त से प्रारंभ यह तीन दिवसीय सम्मेलन विशेष महत्व रखता है क्योंकि यह भारत के स्वतंत्रता दिवस हमारे अपार राष्ट्रीय गौरव के दिन से शुरू हुआ है। हम स्वतंत्रता और प्रगति के 79 वर्षों का उत्सव मना रहे है। यह सम्मेलन नाक, कान, गला रोग के क्षेत्र के बेहतरीन ज्ञान साझा करने और स्वास्थ्य एवं उपचार संबंधी शोध को आगे बढ़ाने का श्रेष्ठ माध्यम है।अपने संबोधन में उन्होंने कहा कि ईएनटी कई ऐसे गंभीर मुद्दों से जुड़ा है, जिनमें सिर, गले के कैंसर प्रमुख हैं। दुर्भाग्य से, छत्तीसगढ़ में तंबाकू सेवन की आदतें व्यापक हैं। जिसके कारण ऐसे मामलों की संख्या काफी अधिक है। उन्होंने इस समस्या से निपटने के लिए समाज और विशेषज्ञों से मिलकर कार्य करने का आव्हान किया।राज्यपाल ने कहा कि बहरापन जीवन की गुणवत्ता प्रभावित करता है। सरकार द्वारा चलाए जा रहे विभिन्न कार्यक्रमों से इस समस्या के समाधान में मदद मिल रही है। उन्होंने विश्वास जताया कि यह सम्मेलन भी क्षमता निर्माण और जनजागरूकता बढ़ाने में योगदान देगा।श्री डेका ने कहा कि एम्स रायपुर तेज़ी से स्वास्थ्य और चिकित्सा शिक्षा के क्षेत्र में उत्कृष्ट केंद्र बनकर उभर रहा है। उन्होंने सम्मेलन के आयोजकों को बधाई देते हुए कहा कि इस तरह के आयोजन न केवल उभरती चुनौतियों के समाधान प्रस्तुत करते है बल्कि नवाचार को भी बढ़ावा देते है।

ब्रह्माकुमारीज द्वारा शान्ति सरोवर सट्टू में सजाई मई मनमोहक झाँकी

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय द्वारा जन्माष्टमी के उपलक्ष्य में विधानसभा मार्ग पर शान्ति सरोवर रिट्रीट सेन्टर में बहुत ही आकर्षक झाँकी सजाई गई है। जिसमें इस संस्थान के बाल कालाकारों द्वारा महारास और श्रीकृष्ण का तुलादान नामक नृत्य नाटक की प्रस्तुति मन को मोह लेती है। इस झाँकी का शुभारम्भ क्षेत्रीय निदेशिका ब्रह्माकुमारी हेमलता दीदी और रायपुर संचालिका ब्रह्माकुमारी सविता दीदी ने किया।इस अवसर पर क्षेत्रीय निदेशिका ब्रह्माकुमारी हेमलता दीदी ने कहा कि श्रीकृष्ण जयन्ती का यही ईश्वरीय सन्देश है कि श्रीकृष्ण के दैवी गुणों को जीवन में उतारने का पुरूषार्थ किया जावे। उन्होंने कहा कि विज्ञान के इस युग में श्रीकृष्ण की जयन्ती मना लेना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि उनके द्वारा किए गए महान कार्यों के बारे में गहन चिन्तन कर उसे धारण करने की जरूरत है।उन्होंने बतलाया कि मनुष्य के अन्दर व्याप्त काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार ही उसके परम शत्रु हैं। जब हम इन विकारों पर विजय प्राप्त कर लेंगे तभी हम सुख और शान्ति से जीवन यापन कर सकेंगे। गीता के माध्यम से समाज को यह सन्देश दिया गया है कि परमात्मा के साथ प्रीत बुद्धि होकर रहो क्योंकि इससे ही परिस्थितियों पर विजय प्राप्त करने में परमात्मा की मदद मिल सकेगी।

मन ही पाप का सोर्स है,मन को अच्छा रखो और आनंद में रहो : मनीष सागर जी महाराज

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। टेगौर नगर पटवा भवन में जारी चातुर्मासिक प्रवचनमाला में परम पूज्य उपाध्याय भगवंत युवा मनीषी श्री मनीष सागर जी महाराज ने प्रमाद से अप्रमाद की ओर एवं अजागृति से जागृति की ओर बढ़ने की सीख दी।धर्मसभा में गुरुवार को उपाध्याय भगवंत ने कहा कि हम स्वयं ही जागृति के लिए जिम्मेदार है। ज्ञान गुरु से मिल सकता है। श्रद्धा चिंतन से मिल सकती है।

चारित्र्य दूसरों को देखकर प्रेरित हो सकता है। तप के लिए उल्लास काम करता है लेकिन जागृति के लिए अभ्यास बहुत जरूरी है। गलतियों से सबक लेकर ही जागृति का अभ्यास होता है। गलतियों का पश्चाताप करके हम कुछ सीख सकते हैं। तभी हमारे भीतर जागृति का विकास होता है।

उपाध्याय भगवंत ने कहा कि हम पाप तो करते हैं लेकिन पाप को बुरा नहीं मानते हैं। पाप को अच्छा मानते हैं तो पाप मजबूत होता जाता है। पाप मजबूत होता है तो उसे छोड़ना मुश्किल होता है।

पाप नहीं करना संभव नहीं है, ऐसा सोचकर हम टाल देते हैं। पाप

करके पाप का आनंद कभी मत मनाओ। हिंसा नहीं करना चाहिए। किसी को दुखी नहीं करना चाहिए। ऐसी भावना करते जाएंगे तो जागृति अपने आप आ जाएगी। देव,गुरु और धर्म के जितने निकट आएंगे आपको रास्ते मिलते रहेंगे।

उपाध्याय भगवंत ने कहा कि संयम प्रमाद से ही छूटता है। हमें प्रमाद नहीं करना है और संयम नहीं छोड़ना है। ऐसा करके हम जागृति की ओर बढ़ेंगे। लक्ष्य है कर्म को जीतना है और कर्म के कारण को जीतना है। कर्म तो फल देते हैं। कर्म का कारण क्या है यह जानना है।कर्म का कारण राग, द्वेष,मोह है। संसार पाप रूप है। संसार असार है। यह सच्चाई जाननी चाहिए। प्रवचन में अगर आ रहे हैं तो जागरुक रहना जरूरी है। प्रवचन में आना है तो दिखावे के लिए नहीं आना है। मोह करके नहीं आना है। एक लक्ष्य बनाकर आना है तभी जागृति संभव है।उपाध्याय भगवंत ने कहा कि पुण्य का उदय एक समाधान नहीं है। पुण्य का उदय समाधान की ओर बढ़ने का एक सपोर्ट है। आप स्वस्थ हो तो धर्म कर सको, तप कर सको और त्याग कर सको। पुण्य का उदय आया है तो ऊपर उठने का विचार होना चाहिए। पाप को पकड़ने का माध्यम ही उसका सोर्स है। पाप का सोर्स पकड़ा गया तो पाप अपने आप कंट्रोल में आ जाएगा। मन ही पाप का सोर्स है। मन अच्छा रहेगा तो सुख आपको ही मिलेगा। हमेशा मन अच्छा रखो और आनंद में रहो।उपाध्याय भगवंत ने कहा कि बुद्धि से शुद्धि होगी और शुद्धि से सिद्धि होगी। बुद्धि को प्रवचन में पाकर शुद्धि से हर जगह जीने से सिद्धि आवश्यक हो जाएगी।बस अभ्यास रहे आनंद नहीं खोना है। आनंद को खोने के लिए परिस्थितियों मिल सकती है। दोषारोपण परिस्थितियों पर नहीं करना है। हमारा आनंद हमेशा बरकरार रहे इसके लिए हमारी ताकत बस जागृति है। अभ्यास रहे कि दूसरों को दुखी करना नहीं है और दूसरे से दुखी होने नहीं है।

धर्मसभा में 29 उपवास के तपस्वियों का हुआ सम्मान : चातुर्मास समिति के अध्यक्ष श्यामसुंदर बैदमुथा ने बताया कि चातुर्मास में तप,त्याग एवं तपस्या का क्रम निरंतर जारी है। धर्मसभा में 29 उपवास के तपस्वी ज्ञानमल बाघमार एवं 29 उपवास की तपस्वी उषा राखेचा का सम्मान किया गया। उन्होंने बताया कि शुक्रवार को परम पूज्य आध्यात्म योगी महेंद्र सागरजी महाराज का प्रवचन टैगोर नगर भवन में ही होगा।

युवक पर धारदार हथियार से हमला

मीडिया ऑडीटर, रायपुर (निप्र)। बदमाशों ने युवक को घर से घसीट कर बाहर निकाला, फिर मारपीट कर धारदार हथियार से हमला कर दिया। गंभीर रूप से घायल युवक की अगले दिन अस्पताल में इलाज के दौरान मौत हो गई। घटना का CCTV वीडियो भी सामने आया है। विवाद की वजह साफ नहीं हो पाई है। मामला डीडी नगर थाना क्षेत्र के चंगोरा भाठा इलाके का है।जानकारी के मुताबिक, संतोषी यादव ने थाने में शिकायत दर्ज कराई था कि, वो बजरंगबली मंदिर के पास चंगोरा भाठा में रहती है। 13 अगस्त को उनका बेटा सोमनाथ यादव घर में सोया था। रात 11 चार लड़के घर पर आकर दरवाजा बजाएं। सोमनाथ ने घर का दरवाजा खोला। तो लड़कों ने उसे पकड़ लिया। फिर घसीटकर घर के बाहर लेकर आए।

जबलपुर में बदमाश की धारदार हथियार से हत्या, गांव के लड़कों ने पुरानी रंजिश का लिया बदला; 28 से अधिक आपराधिक मामले थे दर्ज

जबलपुर, एजेंसी । जबलपुर में शुक्रवार देर रात ग्रामीणों ने मिलकर एक बदमाश की धारदार हथियार से हत्या कर दी। घटना ग्राम रिठौरी की है। आरोपी लक्ष्मण, देवेंद्र बंजारा सहित अन्य ने पुरानी रंजिश का बदला लिया है। खमरिया पुलिस ने मामला दर्ज कर आरोपियों की तलाश शुरू कर दी है। पुलिस का दावा है कि आरोपियों को जल्द पकड़ लिया जाएगा। पनागर निवासी रूपेंद्र साहू आदतन अपराधी था। उसके खिलाफ अवैध वसूली, हत्या के प्रयास और रुपयों के लिए लोगों को धमकाने सहित अन्य मामलों में 28 अपराध दर्ज थे। उसका रिठौरी, मझगवां, तिलगवां और वर्धा घाट तक आतंक था। रूपेंद्र साहू और उसके दोस्त सतीश कुशवाहा, जित्तू बंजारा एवं दो अन्य ने ग्राम रिठौरी निवासी लक्ष्मण बंजारा पर सितंबर 2024 में हमला किया था। तभी से बंजारा परिवार रूपेंद्र को ठिकाने लगाने की फिराक में था।

रूपेंद्र साहू, मृतक

11 माह बाद लिया बदला : आरोपी लक्ष्मण बंजारा ने 11 माह बाद बदला लिया है। दरअसल, सितंबर 2024 में लक्ष्मण बंजारा पर रूपेंद्र साहू और उसके साथियों ने चाकू से हमला किया था। लक्ष्मण प्रतिदिन की तरह अपनी मोटरसाइकिल से दूध बांटकर भैसों के लिए दान खरीदने रांझी चुंगी नाका पर रुका, तभी एक कार आकर रुकी, जिसमें रूपेंद्र साहू, सतीश कुशवाहा, जित्तू बंजारा एवं उसके दो साथी सवार थे। कार से उतरते ही बदमाशों ने लक्ष्मण को घेर लिया और चाकू से गंभीर रूप से घायल कर फरार हो गए। घटना के बाद से पुलिस हमलावरों को लगातार तलाश रही थी। इस बीच सभी ने जिला छोड़ दिया था।कि सरकार लाखों रुपए खर्च करती है, लेकिन कर्मचारियों की लापरवाही से अस्पताल बदहाल स्थिति में है। हॉस्पिटल में चोरी की घटनाएं भी बढ़ीं अस्पताल में चोरी की घटनाएं भी बढ़ी हैं। मुकेश अहिरवार नाम के युवक ने बताया कि पत्नी की डिलीवरी के दौरान उनका मोबाइल चोरी हो गया। वहीं इसके पहले भी डॉक्टर, कर्मचारी और पुलिस चौकी के स्टाफ की बाइक चोरी हो चुकी हैं, जो अभी तक नहीं मिली हैं। सिविल सर्जन डॉ. चौरसिया से संपर्क का प्रयास किया गया, लेकिन वे व्यस्त थे। सीएसपी अरुण कुमार सोनी ने कहा कि वे मामले की जांच करवाएंगे।

शराब दुकान पर की थी फायरिंग : आठ माह पहले रूपेंद्र साहू के गुर्गों ने अवैध वसूली के लिए खमरिया शराब दुकान पर फायरिंग की थी। इस घटना में दुकान में बैठा कर्मचारी बाल-बाल बच गया था। पुलिस ने दुकान संचालक की शिकायत पर रूपेंद्र साहू और उसके गुर्गों की तलाश शुरू कर दी। पुलिस जांच में सामने आया कि रूपेंद्र के शॉर्प शूटर आकाश बग्गा ने फायरिंग की थी। पुलिस को जानकारी मिली कि रूपेंद्र सिहोरा के एक खेत में छिपा है, लेकिन पुलिस के पहुंचने से पहले ही वह भागने में सफल हो गया। बाद में पुलिस ने उसे दिल्ली के जनकपुरी इलाके के एक होटल से गिरफ्तार किया।

28 आपराधिक मामले, गैंग का संचालन : रूपेंद्र साहू पर हत्या के प्रयास, लूट, मारपीट और अवैध हथियार रखने सहित 28 आपराधिक मामले दर्ज हैं। उसने एक गैंग बना लिया था, जिसमें 20 से 25 साल के लड़के शामिल हैं। गैंग के सदस्यों को अपराध करने के लिए पैसों का लालच देता था। बढ़ती गतिविधि को देखते हुए पुलिस रूपेंद्र के खिलाफ जिला बदर की कार्रवाई करने की तैयारी कर रही थी।

सागर विधायक के बंगले में मिला सांप:पौधों के बीच छिपा बैठा था रेड स्नेक प्रजाति का सांप, रेस्क्यू कर स्नेक कैचर ने जंगल में छोड़ा

सागर, एजेंसी। सागर विधायक शैलेंद्र जैन के बंगले में शनिवार को करीब साढ़े 6 फीट लंबा रेड स्नेक पाया गया। बंगले में लगे पौधों के बीच छिपा सांप देख कर्मचारियों में हड़कंप मच गया।

स्नेक कैचर ने किया रेस्क्यू : बंगले के कर्मचारियों ने स्नेक कैचर बबलू पवार को सूचना दी। उन्होंने मौके पर पहुंचकर सांप को सुरक्षित रेस्क्यू कर जंगल में छोड़ा। बबलू पवार ने बताया कि सांप रेड स्नेक प्रजाति का था और कुछ देर की मशक्कत के बाद पकड़ लिया गया।

सावधानी बरतें : उमस ज्यादा होने के कारण सांप बिलों से बाहर निकल रहे हैं। लोगों को घरों के आसपास साफ-सफाई रखनी चाहिए और रात के समय अंधेरे में सावधानी से आवागमन करना चाहिए। उजाले का इस्तेमाल करना भी जरूरी है।

बेटा दुष्कर्म का आरोपी, मां की लाश खेत में मिली:रायसेन में 5 दिन से लापता महिला की लाश घर के पीछे मिली, हत्या की आशंका

रायसेन, एजेंसी। रायसेन जिले के दिल्हारी गांव में शुक्रवार को एक महिला का शव खेत में मिला है। महिला 5 दिन से लापता थी, उसका बेटा बलात्कार का आरोपी है। महिला का नाम मुन्नीबाई रैकवार (55) है। उनके घर के पीछे खलिहान में मिला है।

जानवरों ने नोच दिया था शव : शुक्रवार को आस पास के लोगों ने बदबू आने पर खलिहान में जाकर देखा तो वहां एक शव पड़ा हुआ था। लोगों ने इसकी जानकारी पुलिस को दी। जानकारी मिलने पर पुलिस मौके पर पहुंची। पुलिस ने महिला के शव को पोस्टमार्टम के लिए भोपाल भेज दिया है। मामले में हत्या की आशंका भी जताई जा रही है। शव को जानवरों ने भी नोच दिया था।

महिला का बेटा रेप का आरोपी : सिलवानी एसडीओपी अनिल सिंह मौर्य ने बताया कि मृतका पिछले कुछ दिनों से लापता थी। प्रथम दृष्टया शव 5-6 दिन पुराना लग रहा है। पुलिस ने मर्ग कायम कर जांच शुरू कर दी है। बता दें कि 12 अगस्त को मृतका के बेटे पर उसकी ही 13 साल की नाबालिग सौतेली बेटी से रेप का आरोप लगा था। बम्होरी थाना प्रभारी प्रतीम सिंह राजपूत मौके पर पहुंचकर जांच में जुटे हैं। एसडीओपी मौर्य ने कहा कि पोस्टमार्टम रिपोर्ट आने के बाद ही मौत के कारणों का पता चल सकेगा।

नर्मदा का पानी उज्जैन पहुंचा, जल संकट खत्म; शहर में मिलता रहेगा एक दिन छोड़कर पानी, गंभीर डैम में 8 दिन का बचा था पानी

उज्जैन, एजेंसी। जल संकट के मुहाने पर खड़ा उज्जैन शहर के लिए शुक्रवार को बड़ी खुशखबरी मिली है। पाइपलाइन के जरिए नर्मदा का पानी उज्जैन पहुंच चुका है और अब जल्द ही नर्मदा का पानी शहरवासियों को मिलने लगेगा। शहर में जल सप्लाई का मुख्य स्रोत गंभीर डैम सूख चुका है। डेढ़ माह से अधिक बीत जाने के बाद भी शहर में जल संकट की स्थिति बनी हुई है। शहर की प्यास बुझाने वाले गंभीर डैम की हालत यह है कि अब मात्र 8 दिन का पानी बचा हुआ है। ऐसे में उज्जैन में गंभीर जल संकट बना हुआ है। शाम करीब 4-30 बजे गंभीर डैम पर ग्रामीण क्षेत्र के लिए नल-जल योजना के तहत बनाए इंटेक में नर्मदा का 129 एमएलडी पानी आ गया। पीएचई एई वैभव भावसार ने बताया कि ग्रामीण क्षेत्र की नल-जल योजना के

चलते गंभीर डैम पर इंटेक बनाया गया है। इससे नर्मदा का पानी ले सकते हैं और गंभीर डैम फुल होने पर पानी वापस भी दे सकते हैं। इसी योजना के तहत शुक्रवार को नर्मदा से 129 एमएलडी पानी गंभीर डेम में आ गया है। प्रतिदिन इतना पानी नर्मदा से आता रहेगा, जिससे शहर में जल सप्लाई में दिक्कत नहीं होगी। हालांकि अभी एक दिन छोड़कर ही जल सप्लाई की जाएगी। निगम आयुक्त अभिलाष मिश्रा ने बताया कि गऊघाट पर पाइपलाइन का काम भी चार दिनों में पूरा हो जाएगा।

छतरपुर जिला अस्पताल की स्थिति बदहाल, मरीजों को जमीन पर लेटना पड़ रहा; चोरी की घटनाएं बढ़ीं

छतरपुर, एजेंसी। छतरपुर जिला अस्पताल इस समय बदहाली से जूझ रहा है। अस्पताल की पांच मंजिला इमारत में मरीजों को बुनियादी सुविधाएं तक नहीं मिल रही हैं। हॉस्पिटल के तीन गेटों में से दो बंद हैं, जहां आवारा पशु बैठे रहते हैं। एकमात्र गेट जो खुला है वहां भी कचरा बिखरा पड़ा हुआ है। अस्पताल में पीने का पानी मिलने वाले वाटर टैंक के पास पान-गुटखे के दाग लगे हैं।

जमीन पर लेटकर इलाज करा रहे मरीज : वार्डों में डस्टबिन नहीं होने से कचरा चारों ओर फैला है। शौचालय और बाथरूम का हाल और भी बुरा है। पीने के पानी की व्यवस्था नहीं है। फ्रिज और नल खराब पड़े हैं। अव्यवस्थाओं और मरीजों की बढ़ती संख्या के कारण डॉक्टर जल्दी छुट्टी कर दे रहे हैं। ज्यादा मरीज होने पर कई मरीजों को वार्ड के बाहर जमीन पर लेटकर इलाज करवाना पड़ रहा है।

पार्किंग व्यवस्था भी खराब : अस्पताल के मुख्य द्वार पर पानी का पाइप लीक है, जिससे पानी बह रहा है। गेट पर अव्यवस्थित रूप से खड़ी बाइक्स एंबुलेंस की आवाजाही में बाधा बन रही हैं। स्थानीय लोगों का आरोप है ।

खंडवा में नये तहसील भवन का लोकार्पण, 6 करोड़ 40 लाख की लागत से बना; सांसद बोले- विकास के लिए प्रतिबद्ध सरकार

खंडवा, एजेंसी। खंडवा में स्वतंत्रता दिवस के मौके पर संयुक्त तहसील कार्यालय की नई बिल्डिंग का लोकार्पण किया गया है। अफसरों और जनप्रतिनिधियों की मौजूदगी में एक कार्यक्रम हुआ और विधिवत पूजा-अर्चना कर फीता काटा गया। नये भवन का निर्माण 6 करोड़ 40 लाख रूपए की लागत से हुआ हैं। भवन हरसूद रोड़ स्थित केंद्रीय विद्यालय के पीछे बनाया गया है।

विकास के लिए प्रतिबद्ध है बीजेपी- पाटिल : कार्यक्रम में सांसद ज्ञानेश्वर पाटिल भी शामिल हुए, सांसद पाटिल ने कहा कि भाजपा की केंद्र और राज्य की सरकार विकास के लिए प्रतिबद्ध हैं। लोगों से अपील की कि इस त्योहारी सीजन में स्वदेशी अपनाएं और स्थानीय दुकानदारों से सामग्री खरीदें। ऑनलाइन खरीदी से दूसरे देश की आर्थिक स्थिति मजबूत होती है, उन्हें ही लाभ होता हैं। सांसद ने बताया कि जल्द ही शहर को बायपास की सौगात मिलने वाली हैं। खंडवा-मूंदी हाईवे का निर्माण होना हैं।

महापौर ने मिट्टी की मूर्तियां

खरीदने की अपील की : विधायक कंचन तनवे ने कहा कि मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव के नेतृत्व में प्रदेश में विकास कार्य तेजी से हो रहे हैं। इसी के तहत खंडवा जिले में भी विकास कार्यों में गति आई है। महापौर अमृता यादव ने आगामी त्यौहारों पर मिट्टी की मूर्तियां खरीदने की अपील की। कहा कि प्लास्टर ऑफ पेरिस की मूर्तियों से हमारे जल स्रोत प्रदूषित होते हैं।

विकास काम केवल बीजेपी के लोग ही कर सकते हैं- जिला अध्यक्ष: भाजपा जिलाध्यक्ष राजपालसिंह तोमर ने कहा- साल 2047 तक हमारे देश को विकसित भारत बनाने का जो संकल्प प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने लिया है, उसे पूरा करने के लिए हम सभी को सामूहिक प्रयास करने होंगे। विकास की दूरदर्शी सोच और जनता की उम्मीद पर खरा उतरने का काम सिर्फ भाजपा समर्थित जनप्रतिनिधि ही कर सकता हैं। नये तहसील भवन के लोकार्पण कार्यक्रम में सांसद ज्ञानेश्वर पाटिल के अलावा विधायक कंचन तनवे, अंसारी मौजूद रहीं।

कम फसल बीमा मिलने पर किसानों ने बजाया झुनझुना: सीहोर में खेतों में खड़े होकर किया विरोध, कहा- 5 साल से नहीं मिल रहा मुआवजा

सीहोर, एजेंसी। सीहोर जिले के किसानों ने प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना के खिलाफ अनोखा विरोध किया। किसानों का कहना है कि सरकार ने तो मध्यप्रदेश के किसानों के खातों में करीब 1,383 करोड़ रुपये बीमा राशि भेजी है, लेकिन सीहोर के किसानों को इसके नाम पर सिर्फ झुनझुना थमा दिया गया। नाराज किसानों ने विरोध जताने के लिए खेतों में धान की बालियां लेकर झुनझुना बजाकर विरोध प्रदर्शन किया।

1000 से 1100 मिला मुआवजा: रामाखेड़ी, छापरी, चंदेरी, कूलास सेवनिया और संग्रामपुर जैसे कई गांवों के किसानों ने आरोप लगाया कि बीते 5 सालों से सोयाबीन की फसल लगातार प्राकृतिक आपदा से खराब हो रही है। बैंक हर साल किसानों के खाते से बीमा प्रीमियम काटता है, लेकिन जब नुकसान होता है, तो उन्हें मुआवजा नहीं मिलता। कई किसानों को तो सिर्फ 1,000 या 1,100 रुपए ही मिले, जिसे किसानों ने ऊंट के मुंह में जीरा बताया।

आंदोलन की दी चेतावनी :

किसानों और समाजसेवियों का कहना है कि कृषि विभाग, बैंक और बीमा कंपनी कोई भी साफ जवाब नहीं देती। सरकार गांव-गांव जाकर बीमा कराने का प्रचार तो करती है, लेकिन जब असली मदद की जरूरत होती है, तो किसानों को बीमा राशि की जगह सिर्फ नाम मात्र का पैसा दिया जाता है। किसानों ने चेतावनी दी है कि अगर जल्द ही बीमा का असली लाभ नहीं मिला, तो वे उग्र आंदोलन करेंगे।

बीमा प्रीमियम हर साल काट रहीं कंपनियां : किसानों ने यह भी याद दिलाया कि पिछले साल अधिक बारिश और कलास नदी में बाढ़ से फसलें तबाह हो गई थीं। तब उन्होंने नदी में जल सत्याग्रह किया था, जिसके बाद प्रशासन ने राहत राशि तो दी, लेकिन बीमा का पैसा अब तक नहीं मिला। किसानों का कहना है कि अगर सरकार उन्हें बीमा का फायदा नहीं दे सकती, तो प्रीमियम कटौती भी बंद होनी चाहिए। इस पूरे खेल से बीमा कंपनियों को फायदा और किसानों को नुकसान हो रहा है।

खरगोन की गोमुख और कुंदा नदी उफान पर-भगवानपुरा में ढाई इंच बारिश, पुल से 6 फीट नीचे बहा पानी

खरगोन, एजेंसी। खरगोन जिले के भगवानपुरा क्षेत्र में शुक्रवार रात तेज बारिश हुई। यहां 61 मिमी (करीब ढाई इंच) बारिश रिकॉर्ड की गई। भारी बारिश से पहाड़ी इलाके की गोमुख नदी उफान पर आ गई। बता दें भगवानपुरा में अबतक 393 मिलीमीटर बारिश हो चुकी है।

कुंदा नदी में सीजन में पहली बार बढ़ा जलस्तर : बारिश से खरगोन की कुंदा नदी में इस सीजन की पहली बाढ़ आई है। गोमुख से आया बाढ़ का पानी भगवानपुरा के पुल से करीब 6 फीट नीचे बह रहा है। इसके साथ ही आसपास के कई नदी-नाले भी उफान पर हैं।

फसलों को मिला फायदा पिछले दो दिनों से रुक-रुककर हो रही बारिश से किसानों को राहत मिली है। फसलों को सीधा फायदा हुआ है। अब तक भगवानपुरा क्षेत्र में कुल 393 मिमी बारिश दर्ज हो चुकी है। यह इस सीजन की सबसे तेज बारिश बताई जा रही है। भगवानपुरा थाना प्रभारी इलापसिंह मुजाल्दे ने बताया कि बाढ़ का पानी पुल-पुलिया पर आने के कारण लोगों को सावधानी बरतने की सलाह दी जा रही है। पुलिस लगातार वाहनों की आवाजाही पर नजर रख रही है।

रतलाम एएसपी राकेश खाखा राष्ट्रपति पदक से सम्मानित:बिलपांक टीआई अयुब खान को मिला वीरता पुरस्कार; सीएम ने भोपाल में किया सम्मान

रतलाम, एजेंसी। भोपाल में स्वतंत्रता दिवस के मुख्य समारोह में शुक्रवार 15 अगस्त को रतलाम के दो पुलिस अधिकारियों को मुख्यमंत्री डॉ. मोहन यादव ने सम्मानित किया। एएसपी राकेश खाखा को राष्ट्रपति पुलिस मेधावी सेवा पदक 2025 और बिलपांक थाना प्रभारी अयुब खान को राष्ट्रपति वीरता पुरस्कार दिया गया। दोनों अधिकारियों की उपलब्धि पर रतलाम पुलिस ने बधाई दी। एएसपी राकेश खाखा को पुलिस सेवा में 25 साल पूरे होने पर राष्ट्रपति पदक दिया गया। उनके पूरे कार्यकाल में न केवल साहसिक और उत्कृष्ट काम शामिल रहे, बल्कि उनके खिलाफ कोई आरोप भी नहीं लगा। इस कारण उन्हें मेधावी सेवा पदक के लिए चुना गया। इसकी घोषणा 7 माह पहले केंद्रीय गृह मंत्रालय ने की थी।

पहले भी मिल चुका है पदक : राकेश खाखा को वर्ष 2022 में केंद्रीय गृह मंत्रालय की ओर से उत्कृष्ट सेवा पदक भी मिल चुका है। वे 17 फरवरी 2000 को डीएसपी पद पर नियुक्त हुए थे और फिलहाल रतलाम एएसपी हैं। वे मूल रूप से बालाघाट जिले के से उच्च शिक्षा हासिल कर चुके खाखा बस्तर, बिलासपुर, ग्वालियर, दमोह, विदिशा, राजगढ़, बुरहानपुर, जबलपुर, इंदौर रेल, होशंगाबाद, मंडला, टीकमगढ़ और भोपाल में सेवाएं दे चुके हैं।

टीआई अयुब खान को मिला वीरता पुरस्कार : बिलपांक थाना प्रभारी अयुब खान को 2024 में घोषित राष्ट्रपति वीरता पुरस्कार इस बार मिला। उन्हें यह सम्मान रतलाम में कुख्यात इनामी बदमाश दिलीप दिवेल को एनकाउंटर में मार गिराने के लिए दिया गया। दिवेल पर 6 लोगों की हत्या का आरोप था और उस पर 50 हजार रुपए का इनाम घोषित था।

बदमाश का रतलाम में एनकाउंटर किया था : 18 जून 2020 को रतलाम की डॉ. प्रेमकुंवर सिसौदिया की हत्या और 25 नवंबर 2020 को राजीव नगर में गोविंद की पत्नी शारदा और बेटी दिव्या की हत्या का आरोपी दिलीप दिवेल था। पुलिस ने 3 दिसंबर 2020 को उसकी घेराबंदी की। इस दौरान उसने फायरिंग की। जवाब में पुलिस ने एनकाउंटर कर उसे मौत के घाट उतार दिया।

मुठभेड़ में पुलिसकर्मी भी घायल हुए थे : इस मुठभेड़ में तत्कालीन माणकचौक थाना प्रभारी और वर्तमान बिलपांक थाना प्रभारी अयुब खान, एसआई अनुराग यादव, साइबर सेल कांस्टेबल हिम्मतसिंह, विपुल भावसार और बलराम पाटीदार घायल हो गए थे। इस बहादुरी पर खान को राष्ट्रपति वीरता पुरस्कार दिया गया।

किराये के मकान में आया था आरोपी : पुलिस को 3 दिसंबर 2020 की रात आरोपी दिलीप के खाचरौद मार्ग से मिडटाउन कालोनी रतलाम में किराए के मकान पर आने की सूचना मिली। तत्कालीन एसपी गौरव तिवारी द्वारा बनाई गई एसआईटी ने घेराबंदी कर उसे पकड़ने का प्रयास किया। तभी उसने फायरिंग की। जवाब में पुलिस ने गोलियां चलाकर उसे मौत के घाट उतार दिया था। मुठभेड़ में तत्कालीन माणकचौक थाना प्रभारी (एसआई) व वर्तमान में बिलपांक थाना प्रभारी अयुब खान, एसआई अनुराग यादव, साइबर सेल कॉन्स्टेबल हिम्मतसिंह, विपुल भावसार व बलराम पाटीदार घायल हो गए थे।

छात्रा के सुसाइड मामले में तीनों टीचर्स को हटाया:लगाया था प्रताड़ना का आरोप, सहेली से कहा था- तंग आ गई हूं

मनावर, एजेंसी। धार के मनावर में 12वीं की छात्रा पार्वती वर्मा के सुसाइड के बाद तीनों टीचर्स को हटा दिया गया है। सुसाइड नोट में टीचर्स पर छात्रा ने प्रताड़ना का आरोप लगाया था। परिजन के मुताबिक घटना के कुछ घंटे पहले छात्रा ने अपनी सहेलियों से जान देने की बात कही थी। हालांकि उन्होंने इसे गंभीरता से नहीं लिया। बता दें कि 17 साल की पार्वती वर्मा शासकीय कन्या उच्चतर माध्यमिक स्कूल में पढ़ती थी। सुसाइड नोट में उसने सारिका ठाकुर, लक्ष्मी मंडलोई और आरती चौहान पर मानसिक प्रताड़ना का आरोप लगाया है। छात्रा के पिता मोहन वर्मा, माता आशा वर्मा और बड़ी बहन निशा वर्मा ने बताया कि टीचर उससे नफरत करते थे। तीनों टीचर बेटी को परेशान करती थीं। उसे धमकियां दी जाती थीं।

तीनों टीचर्स को स्कूल से हटाया : आरती चौहान स्कूल में अतिथि शिक्षक थी। बीईओ के हवाले से जारी लेटर में आरती चौहान की सेवाएं समाप्त कर दी हैं। वहीं, प्रभारी प्राचार्य सारिका ठाकुर, (मूलपद उ. मा. शिक्षक) कन्या उमावि, मनावर को पीएम कन्या उमावि, बाकानेर विकासखंड उमरबन भेजा है।

कपिल देव ने स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाएं देते हुए कहा, देश के लिए अपनी जान देने वालों की सराहना करता हूं

मुंबई, ऐजंसी। महान क्रिकेटर और 1983 विश्व कप विजेता कप्तान कपिल देव ने शुक्रवार को देश को स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाएं दीं और लोगों से देश के लिए अपने प्राणों की आहुति देने वालों की प्रशंसा करने का आग्रह किया। मीडिया से बात करते हुए कपिल देव ने कहा, ÷सभी को स्वतंत्रता दिवस की शुभकामनाएं, और हमें हमेशा उन लोगों की प्रशंसा करनी चाहिए जिन्होंने इस देश को सुंदर बनाने के लिए अपना जीवन दिया। इस साल फरवरी में भारत में सफल शुरुआत के बाद, वर्ल्ड पैडल लीग (WPL) ने अपने बहुप्रतीक्षित तीसरे सीज़न का आयोजन किया। भारतीय पैडल महासंघ द्वारा समर्थित यह लीग 12 से 16 अगस्त तक मुंबई के नेस्को सेंटर में आयोजित की जा रही है, जिसमें प्रशंसकों को विश्व स्तरीय पैडल एक्शन का वादा किया गया है।

खेल पर अपने विचार साझा करते हुए कपिल देव ने कहा, ÷मुझे लगता है कि यह एक अद्भुत खेल है, कुछ अलग, जिसकी मैंने कभी कल्पना भी नहीं की थी। मैं टेलीविजन पर कुछ मैच देखता हूं, लेकिन जब आप यहां आकर मैच देखते हैं, तो बहुत अच्छा लगता है। यह उतना आसान नहीं है जितना टेलीविजन पर दिखता है। डब्ल्यूपीएल के तीसरे दिन प्रभावशाली प्रदर्शन और रोमांचक मुक़ाबले देखने को मिले। खान टाइगर्स ने वर्नोस्ट जगुआर को 19-10 से हराकर शानदार जीत हासिल की, जबकि गत विजेता एसजी पाइपर्स चीताज़ ने वेदांता लेपर्ड्स को रोमांचक मुकाबले में 15-14 से हराकर शुक्रवार को गेम चेंजर्स लायंस और हबटाउन पैनोरमा पैंथर्स के साथ सेमीफाइनल में अपनी जगह पक्की कर ली।

टाइगर्स ने महिला युगल में शानदार शुरुआत की, जहाँ एलेजांद्रा सालाज़ार और वेरोनिका विर्सेंडा ने लूसिया मार्टिनेज़ और जियोर्जिया मार्चेंटी को 6-0 से हरा दिया। दूसरे सेट में युवा और अनुभवी खिलाड़ियों का मुकाबला देखने को मिला, जहाँ जगुआर की रामा वालेंजुएला और पोल हर्नांडेज़ ने टाइगर्स की अनुभवी जोड़ी लूचो कैपरा और जुआन बेलाउती को कड़ी टक्कर दी। एक तनावपूर्ण टाईब्रेकर में, टाइगर्स ने अपना धैर्य बनाए रखते हुए सेट 7-6 से जीत लिया। कैपरा ने बाद में कहा कि कोर्ट पर उनका संवाद दबाव में सही स्थिति में ढलने और सही स्थिति बनाने में अहम भूमिका निभाता था। आखिरी सेट में जोस रिको और बेलाउती का सामना मिगुएल और नूनो डेस से हुआ।

दोनों भाई-बहनों ने कड़ी टक्कर दी, लेकिन टाइगर्स ने 6-4 से जीत हासिल कर कुल मिलाकर 19-10 की जीत हासिल की। इस सीज़न में पहली बार सीओसी (आचार संहिता) का उल्लंघन हुआ - लेवल 1÷ अंपायर के निर्देशों की अवहेलना - जब लूचो कैपरा और जुआन बेलुअती अपने सेट के लिए 10 मिनट देरी से मैदान में उतरे। लेवल 2 की चेतावनी मिलने पर, उनके कुल स्कोर से 2 अंक काट लिए जाएँगे।

ग्रैंड शतरंज टूर 2025: सेंट लुइस रैपिड और ब्लिट्ज में संयुक्त छठे स्थान पर रहे डी. गुकेश

नई दिल्ली, ऐजंसी। भारतीय ग्रैंड मास्टर डी.गुकेश ग्रैंड शतरंज टूर 2025 में शुक्रवार को लुईस रैपिड और ब्लिट्ज इवेंट में संयुक्त छठे स्थान पर रहे, जबकि लेवोन अरोनियन ने खिताब जीता। क्लासिकल शतरंज के मौजूदा विश्व चैंपियन गुकेश ने ब्लिट्ज प्रारूप की पहली चार बाजियों में तीन जीत और एक ड्रॉ के साथ अंतिम दिन की शानदार शुरुआत की। हालांकि, वह उसी स्तर को बरकरार नहीं रख सके और दो हार और तीन ड्रॉ के साथ टूर्नामेंट का समापन 18 अंकों के साथ किया और वियतनाम के लिएम ले के साथ संयुक्त रूप से छठे स्थान पर रहे। शीर्ष पांच में अरोनियन (24.5 अंक), फैबियानो कारुआना (21.5 अंक), मैक्सिम वाचियर-लाग्रेव (21 अंक), नोडिरबेक अब्दुसत्तोरोव (20.5 अंक) और वेस्ली सो (19 अंक) शामिल थे।

प्रारूप : सेंट लुइस में आयोजित 10 खिलाड़ियों की प्रतियोगिता रैपिड वर्ग में एकल राउंड रॉबिन थी, जिसमें जीत पर 2 अंक और ड्रॉ पर एक अंक मिलता था। 9 राउंड के बाद, ब्लिट्ज वर्ग हुआ - एक डबल राउंड रॉबिन जिसमें जीत पर एक अंक और ड्रॉ पर 0.5 अंक मिलते थे। सेंट लुइस रैपिड और ब्लिट्ज, 2025 ग्रैंड शतरंज टूर का चौथा चरण और सीजन का अंतिम रैपिड-एंड-ब्लिट्ज इवेंट था।

झज्जर की शूटर मनु भाकर ने पद्मश्री के लिए किया आवेदन

झज्जर, ऐजंसी। खेल रत्न और अर्जुन अवार्ड विजेता झज्जर की शूटर मनु भाकर ने अब पद्मश्री सम्मान के लिए आवेदन किया है। वर्तमान में वह कजाकिस्तान में 16 से 30 अगस्त तक चल रही एशियन शूटिंग चैंपियनशिप में भाग ले रही हैं। झज्जर के गांव गोरिया में जन्मीं मनु भाकर के परिवार एक सदस्य ने बताया कि मनु ने पद्मश्री के लिए आवेदन किया है। मनु विश्व शूटिंग चैंपियनशिप में भाग लेने के लिए भी तैयारी कर रही है। यह प्रतियोगिता और इंटरनेशनल शूटिंग स्पोर्ट्स फेडरेशन (आईएसएसएफ) विश्व कप का आयोजन 2027-28 में भारत की राजधानी नई दिल्ली में होगा। दिल्ली के लेडी श्रीराम कॉलेज से बीए और पंजाब यूनिवर्सिटी चंडीगढ़ से एमए कर चुकी मनु भाकर ने अब खेल मैनेजमेंट में एमबीए की पढ़ाई के लिए भारतीय प्रबंध संस्थान (आईआईएम) रोहतक में प्रवेश के लिए आवेदन किया है। एशियाई चैंपियनशिप कज़ाकिस्तान से लौटने के बाद वह यह पढ़ाई शुरू करेंगी। उल्लेखनीय है कि मनु भाकर को खेल उपलब्धियों के लिए दिए जाने वाले देश के हर बड़े सम्मान से नवाजा जा चुका है। मनु भाकर को इस साल जनवरी में राष्ट्रपति द्रौपदी मुर्मू से खेल रत्न पुरस्कार मिला था। वर्ष 2024 में फ्रांस की राजधानी पेरिस में हुए ओलंपिक खेलों में टीम प्रतिस्पर्धा में मनु को दो स्वर्ण पदक हासिल हुए थे। इससे पहले वर्ष 2018 में हुए यूथ ओलंपिक में भी इस अचूक निशानेबाज ने एक स्वर्ण और एक रजत पदक पर कब्जा जमाया। उसी साल आईएसएसएफ स्वर्ण पदक और राष्ट्रमंडल खेलों 25 मीटर टीम प्रतिस्पर्धा में स्वर्ण पदक प्राप्त किया।

टीएनपीएल स्टार तुषार रहेजा ने कहा, महान धोनी उनके आदर्श हैं

नई दिल्ली, ऐजंसी। युवा बाएं हाथ के विकेटकीपर बल्लेबाज तुषार रहेजा, जो धीरे-धीरे टी 20 प्रारूप में गेंदबाजों के लिए एक बुरे सपने की प्रतिष्ठा बना रहे हैं, ने खुलासा किया कि भारत और चेन्नई सुपर किंग्स के पूर्व कप्तान एमएस धोनी वह खिलाड़ी हैं जिन्हें उन्होंने हमेशा आदर्श माना है। हाल ही में संपन्न तमिलनाडु प्रीमियर लीग (टीएनपीएल) में तुषार वरुण चक्रवर्ती और रविचंद्रन अश्विन की स्पिन जोड़ी पर हावी रहे हैं। 24 वर्षीय इस खिलाड़ी ने विभिन्न प्रकार के शॉट्स खेलने में महारत हासिल कर ली है और टीएनपीएल सर्किट में उन्हें रॉकेट रहेजा के नाम से जाना जाता है। तेज़ गेंदबाज़ी के ख़िलाफ़ अपनी कुशलता के अलावा, तुषार ने तिरुप्पुर तमीज़हंस के पहले खिताबी अभियान के दौरान वरुण और अश्विन की लय को भी बिगाड़ा। उनके कप्तान, साई किशोर, तुषार के स्पिन को रोकने के तरीके से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सार्वजनिक रूप से घोषणा कर दी कि यह युवा विकेटकीपर इंडियन प्रीमियर लीग (आईपीएल) के लिए तैयार है। अपनी निरंतर प्रगति पर तुषार ने खुलासा किया कि धोनी उन्हें प्रेरित करते रहते हैं। रहेजा ने ईएसपीएनक्रिकइन्फो से कहा, ÷मैं हमेशा से धोनी का प्रशंसक रहा हूँ। जब मैथ्यू हेडन सीएसके के लिए खेलते थे, तो मैं चेपक में उनके कई मैच देखने जाता था। जिस तरह से वह तेज़ गेंदबाज़ों की धुनाई करते थे, उससे मैं मंत्रमुग्ध हो जाता था। मैं युवराज सिंह का भी कायल था, लेकिन मैंने हमेशा धोनी को ही अपना आदर्श माना है। तुषार ने धन-संपन्न आईपीएल के 18वें सत्र से पहले कई ट्रायल में भाग लिया, लेकिन चयनकर्ताओं का ध्यान आकर्षित करने में असफल रहे। उन्होंने टीएनपीएल रन-स्कोरिंग चार्ट में शीर्ष स्थान हासिल करने के बाद नीलामी में जगह बनाई, जिसमें अश्विन की डिंडीगुल ड्रैगन्स के खिलाफ फाइनल में 77 रन की पारी सहित 185.55 की प्रभावशाली स्ट्राइक रेट के साथ नौ पारियों में 488 रन बनाए। उन्होंने कहा, मुझे लगा कि मैंने दिल्ली ट्रायल्स में अच्छा प्रदर्शन किया था और फिर मुझे टूर्नामेंट के दौरान भी बुलाया गया। यह भी एक अच्छा अनुभव था और इससे मुझे आगे बढ़ने में भी मदद मिली। मैं प्रियांश आर्य जैसे उन लोगों में से था जिन्हें इस साल के आईपीएल में चुना गया था। नीलामी के बाद, मैंने खुद की तुलना उनसे करने की कोशिश की कि वे क्या सही कर रहे हैं और मैं क्या नहीं।÷ तुषार ने आगे कहा, उन्हें ट्रायल्स में देखना, उनके वीडियो देखना और आईपीएल में उन्हें देखना - इससे मुझे बहुत कुछ सीखने को मिला। हेमंग बदानी, राहुल द्रविड़ और अन्य भारतीय क्रिकेटरों के बीच है।

भारत के युवा मुक्केबाज़ अंतर्राष्ट्रीय युवा मुक्केबाज़ी प्रतियोगिता के लिए चीन पहुँचे

नई दिल्ली, ऐजंसी। 59 सदस्यीय भारतीय दल 15 से 30 अगस्त तक होने वाले तीसरे ÷बेल्ट एंड रोड÷ अंतर्राष्ट्रीय युवा मुक्केबाजी गाला, यू 17/ यू 19/ यू 23 अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण शिविर और टूर्नामेंट में भाग लेने के लिए उरुमकी, झिंजियांग, चीन पहुंचा।

टीम में 20 लड़के और 20 लड़कियाँ शामिल हैं, जिन्हें 12 कोच, छह सहायक कर्मचारी और एक रेफरी और जज (आर एंड जे) का समर्थन प्राप्त है। बीएफआई की एक प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार, चीनी मुक्केबाजी महासंघ और झिंजियांग उइगर स्वायत्त क्षेत्र सरकार द्वारा आयोजित इस प्रतियोगिता की शुरुआत 17 से 25 अगस्त तक उरुमकी में एक प्रशिक्षण शिविर से होगी, जिसके बाद 26 से 29 अगस्त तक उरुमकी और यिली में प्रतियोगिता चरण आयोजित होगा।

इस संस्करण में केवल अंडर-17 लड़के और लड़कियाँ ही भारत का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। इन मुक्केबाजों का चयन छठी अंडर-17 जूनियर लड़के और लड़कियों की राष्ट्रीय मुक्केबाजी चैंपियनशिप 2025 से किया गया है, जिसमें एशियाई युवा खेलों के भार वर्गों में स्वर्ण और रजत पदक विजेता और गैर-एशियाई युवा खेलों के भार वर्गों में स्वर्ण पदक विजेता शामिल हैं। मुक्केबाज़ कई श्रेणियों में प्रतिस्पर्धा करेंगे। अंडर-17 लड़के और लड़कियां 13 भार वर्गों में प्रतिस्पर्धा करेंगे÷ 46 किग्रा, 48 किग्रा, 50 किग्रा, 52 किग्रा, 54 किग्रा, 57 किग्रा, 60 किग्रा, 63 किग्रा, 66 किग्रा, 70 किग्रा, 75 किग्रा, 80 किग्रा और +80 किग्रा।

इस अंतर्राष्ट्रीय प्रशिक्षण शिविर और प्रतियोगिता में भाग लेने से भारत के युवा मुक्केबाजों को मजबूत वैश्विक प्रतिद्वंद्वियों के खिलाफ बहुमूल्य अनुभव और अनुभव प्राप्त होने की उम्मीद है।

हाल के महीनों में, भारतीय जूनियर मुक्केबाजों ने अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में शानदार प्रदर्शन किया है, खासकर इस साल की शुरुआत में एशियाई अंडर-15 और अंडर-17 चैंपियनशिप में, जहाँ टीम ने 43 पदक जीते और कुल मिलाकर दूसरे स्थान पर रही।

पूर्व ऑस्ट्रेलियाई कप्तान बॉब सिम्पसन का 89 वर्ष की आयु में निधन

नई दिल्ली, ऐजंसी। ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट टीम के पूर्व कप्तान बॉब सिम्पसन का शनिवार को 89 वर्ष की आयु में निधन हो गया। सिम्पसन न केवल एक शानदार बल्लेबाज़ थे बल्कि ऑस्ट्रेलियाई क्रिकेट के पुनरुत्थान में भी उनका बड़ा योगदान रहा। बतौर पहले पूर्णकालिक कोच, उन्होंने 1980 और 1990 के दशक में ऑस्ट्रेलिया को मज़बूत टीम के रूप में स्थापित करने में अहम भूमिका निभाई। उस दौरान टीम की कप्तानी ऐलन बॉर्डर और मार्क टेलर ने की।

सिम्पसन ने 1957 में दक्षिण अफ्रीका के खिलाफ टेस्ट डेब्यू किया था। अपने करियर में उन्होंने 62 टेस्ट मैच खेले और 46.81 की औसत से 4869 रन बनाए। इसमें 10 शतक और 27 अर्धशतक शामिल रहे। शुरुआती दौर में बतौर ऑलराउंडर डेब्यू करने वाले सिम्पसन ने बाद में खुद को 1960 के दशक में ऑस्ट्रेलिया का भरोसेमंद ओपनिंग बल्लेबाज़ साबित किया। 1964 में उन्होंने 1381 रन बनाए, जो उस समय का रिकॉर्ड था। इसमें उनका सर्वाधिक टेस्ट स्कोर 311 रन (इंग्लैंड के खिलाफ, मैनचेस्टर) भी शामिल रहा। अगले दो वर्षों में उन्होंने दो और दोहरे शतक जड़े।

सिम्पसन एक उपयोगी लेग स्पिनर भी थे, जिन्होंने 71 विकेट चटकाए। स्लिप फील्डिंग में भी वे बेहद भरोसेमंद साबित हुए। उनका सर्वश्रेष्ठ गेंदबाज़ी प्रदर्शन भारत के खिलाफ रहा, जब उन्होंने अपने आखिरी टेस्ट में 8 विकेट झटके। इसी मैच में उन्हें दूसरा टेस्ट फाइफर भी मिला।ये परिणाम जमीनी स्तर पर मुक्केबाजी में भारत की बढ़ती गहराई और विश्व मंच पर उसकी अगली पीढ़ी की संभावनाओं को रेखांकित करते हैं।

हाल ही में, महिलाओं के 80+ किलोग्राम वर्ग में स्वर्ण पदक के साथ, रितिका ने बैंकॉक में दोनों आयु वर्गों में कुल 27 पदकों के साथ एशियाई अंडर-19 और अंडर-22 मुक्केबाजी चैंपियनशिप 2025 में टीम इंडिया के अभियान का समापन किया।

दस दिनों तक चले इस टूर्नामेंट में भारत की कुछ सर्वश्रेष्ठ मुक्केबाज़ प्रतिभाएँ एक साथ आईं, जहाँ अंडर-19 मुक्केबाज़ों ने तालिका में दूसरा स्थान हासिल किया, जबकि अंडर-22 मुक्केबाजों ने चौथा स्थान हासिल किया। इस टूर्नामेंट के लिए कुल 40 मुक्केबाज़ों को भेजा गया था, जिनमें से प्रत्येक समूह से 20 मुक्केबाज़ थे। 1968 में भारत के खिलाफ घरेलू सीरीज़ के बाद उन्होंने संन्यास ले लिया था, लेकिन 1977 में 41 वर्ष की उम्र में वे फिर से लौटे। उस समय कई खिलाड़ी वर्ल्ड सीरीज़ क्रिकेट से जुड़ गए थे। उन्होंने भारत के खिलाफ घरेलू सीरीज़ और वेस्टइंडीज़ दौरे पर टीम का नेतृत्व किया, जिसके बाद उन्होंने दोबारा क्रिकेट से विदाई ले ली।, जिसे मैंने इस सीज़न में भी बरकरार रखने की कोशिश की है।

प्रीमियर लीग के पहले मैच में इंजरी टाइम में गोल करने के तुरंत बाद जब एनफील्ड में डिओगो जोटा के लिए गाना गाया गया तो मोहम्मद सलाह फूट-फूट कर रो पड़े।

नई दिल्ली, ऐजंसी। प्रीमियर लीग में लिवरपूल की वापसी एनफ़ील्ड में मिली-जुली भावनाओं से भरी रात रही, जहाँ मैदान पर खुशी के साथ-साथ दिवंगत फ़ॉरवर्ड डिओगो जोटा को भावभीनी श्रद्धांजलि भी दी गई, जिनकी जुलाई में एक कार दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी। रेड्स ने अपने सीज़न के पहले मैच में बॉर्नमाउथ पर 4-2 से जीत हासिल की, और खेल का अंतिम गोल करने वाले मोहम्मद सलाह की आँखों में आँसू आ गए जब प्रशंसकों ने जोटा और उनके भाई आंद्रे सिल्वा, जिनकी भी दुर्घटना में मृत्यु हो गई थी, को श्रद्धांजलि दी।

जोटा की अपनी लंबे समय की साथी रूट कार्डसो से शादी के कुछ ही दिन बाद, 3 जुलाई को स्पेन के ए-52 हाईवे पर पलासियोस डी सनाब्रिया के पास, दोनों की एक घातक दुर्घटना हुई थी। लैम्बोर्गिनी चलाते समय, गाड़ी का टायर फट गया, जिससे वे सड़क से उतर गए और उनकी जान चली गई। एनफ़ील्ड ने हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए, स्टेडियम को ÷हमेशा उनका घर÷ घोषित करते हुए बैनर लगाए और सलाह के साथ एक भावुक श्रद्धांजलि अर्पित की। ÷उन्होंने खेल से पहले, पहले मिनट में, 20 मिनट बाद और फिर अंत में उनके (जोटा) लिए गाना गाया। यह बहुत प्रभावशाली और प्रभावशाली था,÷ लिवरपूल के मुख्य कोच आर्ने स्लॉट ने खेल के बाद कहा। ÷उनकी पत्नी यहाँ हैं, उनके बच्चे यहाँ हैं, और उनके लिए यह सुनना खास हो सकता है कि उन्हें यहाँ कितना प्यार किया जाता है।÷

एक नाटकीय शुरुआत : मैदान पर, मैच में वैसा ही रोमांच देखने को मिला जिसकी प्रशंसकों को लिवरपूल से उम्मीद थी। ह्यूगो एकिटिके ने अपने लीग डेब्यू में ही तुरंत प्रभाव डाला, 37वें मिनट में पहला गोल दागा, और कोडी गाकपो ने मध्यांतर के तुरंत बाद बढ़त दोगुनी कर दी। हालाँकि, बोर्नमाउथ ने हार नहीं मानी। एंटोनी सेमेन्यो ने 64वें मिनट में एक गोल किया और बारह मिनट बाद अपना दोहरा गोल पूरा किया, जिससे घरेलू दर्शकों में थोड़ी बेचैनी ज़रूर हुई और मेहमान टीम को उम्मीद भी जगी।

लिवरपूल की प्रतिक्रिया बेंच से आई, जब फेडेरिको चिएसा ने 88वें मिनट में गोल करके लिवरपूल को पुनः बढ़त दिला दी। चौथा गोल, जिसने लिवरपूल की जीत लगभग पक्की कर दी, इंजरी टाइम में आया जब सलाह ने डिफेंस को चीरती हुई एक ढीली गेंद को अंदर की ओर कट किया और उसे निचले कोने में डालकर एक नाटकीय अंत किया। 94वें मिनट में किए गए उनके इस गोल ने न केवल जीत पक्की कर दी, बल्कि मिस्र के इस खिलाड़ी को 187 गोल के साथ प्रीमियर लीग के सर्वकालिक स्कोररों की सूची में एंडी कोल के साथ चौथे स्थान पर ला खड़ा किया। भावुक होते हुए, सलाह ने आकाश की ओर इशारा किया और जोटा के प्रतिष्ठित गोल सेलिब्रेशन की नकल की।

सुपर स्पेशलिटी अस्पताल के कॉर्डियालॉजी विभाग में अत्याधुनिक कैथलैब मशीन का उप मुख्यमंत्री ने किया लोकार्पण

मीडिया ऑडीटर, रीवा(निप्र)। उप मुख्यमंत्री श्री राजेन्द्र शुक्ल ने सुपर स्पेशलिटी अस्पताल में 8 करोड़ रुपए की लागत की अत्याधुनिक कैथलैब मशीन का लोकार्पण किया। उन्होंने कहा कि सुपर स्पेशलिटी अस्पताल विन्ध्य क्षेत्र के मरीजों के इलाज के लिए वरदान साबित हुआ है। इस अस्पताल में विन्ध्य के साथ-साथ सीमावर्ती राज्य के मरीजों के हृदयरोग का इलाज किया जा रहा है। अत्याधुनिक कैथलैब मशीन हृदयरोग के इलाज में मददगार साबित होगी।

उप मुख्यमंत्री ने कहा कि सुपर स्पेशलिटी अस्पताल चिकित्सा सेवा के मामले में देश में दूसरे और प्रदेश में प्रथम स्थान पर है। यहाँ के चिकित्सकीय स्टाफ के मनोयोग और समर्पण भाव से मरीजों की सेवा करने से अस्पताल ने विशिष्ट स्थान बनाया है। इसी का परिणाम है कि विन्ध्य क्षेत्र के 80 प्रतिशत हृदय रोग के मरीजों का इलाज यहाँ हो रहा है। उन्होंने कहा कि कॉर्डियालॉजी विभाग को सेंटर ऑफ एक्सीलेंस बनाकर और सुविधा संपन्न बनाया जाएगा। उन्होंने कहा कि इलाज के लिए हर प्रकार के चिकित्सकीय उपकरण उपलब्ध कराए जा रहे हैं तथा चिकित्सकों सहित अन्य स्टाफ की भी भर्ती प्राथमिकता से की जा रही है। उप मुख्यमंत्री ने सुपर स्पेशलिटी अस्पताल में संचालित यूरोलॉजी, न्यूरोलॉजी तथा नेफ्रालॉजी विभागों के चिकित्सकों द्वारा मरीजों को प्रदाय की जा रही चिकित्सा सुविधा के बारे में जानकारी ली। उन्होंने कहा कि परिजनों की काउंसलिंग कर ब्रेन डेड मरीज के अंगदान के लिए परिजनों को जागरूक करें ताकि दूसरे मरीज की जान बचाई जा सके। यह पुण्य का कार्य है। शासन द्वारा अंगदान करने पर गार्ड ऑफ आनर तथा सम्मान पत्र दिया जाता है।

इस अवसर पर कॉर्डियालॉजी विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ व्हीडी त्रिपाठी ने बताया कि अस्पताल में पूर्व से एक कैथलैब स्थापित है। दूसरी कैथलैब के बन जाने से हृदयरोगियों के इलाज के लिए सुगमता हो जाएगी। इस दौरान सांसद श्री जनार्दन मिश्र, अध्यक्ष नगर निगम व्यंकटेश पाण्डेय, डीन मेडिकल कालेज डॉ सुनील अग्रवाल, अधीक्षक सुपर स्पेशलिटी अस्पताल डॉ अक्षय श्रीवास्तव, अधीक्षक संजय गांधी अस्पताल डॉ राहुल मिश्रा, डॉ एसके त्रिपाठी, डॉ इमरान, डॉ अवनीश शुक्ला सहित चिकित्सक उपस्थित रहे।

कमिश्नर कार्यालय में बीएस जामोद ने किया ध्वजारोहण

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर कमिश्नर कार्यालय में रीवा संभाग के कमिश्नर बीएस जामोद ने ध्वजारोहण किया। इसके बाद सामूहिक रूप से राष्ट्रगान का गायन किया गया। इस अवसर पर उन्होंने संभाग के सभी नागरिकों को स्वतंत्रता दिवस की बधाई देते हुए कहा कि वीरों के बलिदान और त्याग से हमें आजादी मिली है। हर व्यक्ति को इसका मोल समझना चाहिए। हमें अपने अधिकारों के साथ-साथ कर्त्तव्यों पर भी ध्यान देना चाहिए। कमिश्नर ने उत्कृष्ट कार्य करने वाले अधिकारियों और कर्मचारियों को प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया। कार्यक्रम में अपर कमिश्नर नीतू माथुर, संयुक्त आयुक्त सुदेश मालवीय, संयुक्त आयुक्त दिव्या त्रिपाठी तथा कमिश्नर कार्यालय के अधिकारी-कर्मचारी शामिल रहे।

मजार में तोड़फोड़, धार्मिक झंडा फहराया, तनाव का माहौल; पुलिस तैनात

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। असामाजिक तत्वों ने सैकड़ों साल पुरानी मजार में तोड़फोड़ कर दी। मजार में धार्मिक झंडा फहरा दिया। घटना स्थल के पास 200 मीटर के एरिया में ही हनुमान जी का मंदिर और मजार दोनों है। दोनों ही जगह दोनों समुदाय के लोग बड़ी संख्या में पहुंचते हैं। इलाके में तनाव का माहौल है। पूरा मामला रीवा जिले के गुढ़ विधानसभा क्षेत्र अंतर्गत गोर्गी गांव का है। यहां पर गाज़ी मियां की मजार है। सूचना मिलते ही पुलिस बल मौके पर पहुंचा। यहां एक किलोमीटर के एरिया को पुलिस छावनी में तब्दील कर दिया है। पुलिस के साथ दोनों समुदाय के प्रतिनिधि ने शांति की अपील की है। पुलिस ने अज्ञात आरोपियों के खिलाफ एफआईआर दर्ज कर ली है। पुलिस मामले की जांच में जुटी है।

प्रशासन ने शुरू करवाया मजार का निर्माण: गोर्गी गांव में शुक्रवार की रात को कुछ लोगों ने तोड़फोड़ की थी। शनिवार दोपहर को जब मुस्लिम समाज को इसकी जानकारी लगी तो वहां भीड़ लग गई। पुलिस को बुलाया गया। डीएसपी हिमाली पाठक और एसडीएम गुढ़ अनुराग तिवारी मौके पर पहुंचे। उन्होंने मुस्लिम समाज के लोगों को समझाइश देते हुए क्षतिग्रस्त मजार का दोबारा निर्माण शुरू करवाया।

काजी बोले- अमन और चैन बिगाड़ने की साजिश: शहर काजी मुफ्ती मोहम्मद मुबारक अजहरी ने बताया कि यह हमारे रीवा जिले में पहली ऐसी घटना है। अमन चैन बिगाड़ने की साजिश है। हम प्रशासन ने आरोपियों पर सख्त कार्रवाई और निष्पक्ष जांच की मांग करते हैं।

उप मुख्यमंत्री का हनुमना में जिला महोत्सव कार्यक्रम में किया गया नागरिक अभिनंदन

मऊगंज जिला उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है: उप मुख्यमंत्री

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। उप मुख्यमंत्री राजेन्द्र शुक्ल ने कहा कि मऊगंज जिला उत्तरोत्तर प्रगति की ओर अग्रसर है। सभी के सहयोग से लक्ष्य की पूर्ति के लिए रचनात्मक कार्य सतत जारी रहेंगे। उन्होंने विकसित मऊगंज जिला बनाने के लिए सभी से सहभागी होने की अपेक्षा की। उप मुख्यमंत्री का मऊगंज जिला बनाओ संघर्ष समिति हनुमना द्वारा जिला महोत्सव कार्यक्रम में नागरिक अभिनंदन किया गया।

हनुमना के हनुमान मंदिर परिसर में आयोजित कार्यक्रम में उप मुख्यमंत्री श्री शुक्ल ने कहा कि मऊगंज जिले में विकास के साथ-साथ स्वास्थ्य, सिंचाई सुविधाओं सहित अन्य कार्य प्राथमिकता से कराए जा रहे हैं। बाईपास, रिंगरोड तथा सड़कों का जाल बिछाया जा रहा है। स्वच्छ जल को घर-घर तक पहुंचाने का कार्य प्रगति पर है। आने वाले समय में मऊगंज जिला पूर्ण विकसित जिले के तौर पर जाना जाएगा और इसके विकास कार्य अन्य जिलों के लिए उदाहरण होंगे। उन्होंने कहा कि चिकित्सा के क्षेत्र में मऊगंज, हनुमना सहित ग्रामीण क्षेत्रों के स्वास्थ्य केन्द्रों को सुविधा संपन्न बनाया जा रहा है। चिकित्सकों, चिकित्सकीय स्टाफ व उपकरणों की पूर्ति सुनिश्चित की जा रही है। जनता की आवश्यकता के लिए धन की कोई कमी नहीं है। उन्होंने कहा कि प्रधानमंत्री जी के नेतृत्व में 11 वर्षों के सुशासन काल में देश आर्थिक महाशक्ति बन रहा है। विश्व में हम तीसरे नम्बर की आर्थिक महाशक्ति बनने जा रहे हैं। उन्होंने मऊगंज के विकास के लिए विधायक श्री प्रदीप पटेल को साधुवाद दिया जिनके प्रयासों से विकास हेतु राशि की कोई कमी नहीं हो रही है। उप मुख्यमंत्री ने मऊगंज वासियों को श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के साथ ही मऊगंज जिले की स्थापना के द्वितीय वर्ष पूर्ण होने पर बधाई दी।

कार्यक्रम में विधायक मऊगंज श्री प्रदीप पटेल ने कहा कि मऊगंज जिले की स्थापना के द्वितीय वर्षगांठ पर आयोजित कार्यक्रम में इसी जिले के लाल उप मुख्यमंत्री श्री शुक्ल की उपस्थिति गौरवपूर्ण है। उनके सहयोग से सीतापुर-हनुमना सिंचाई सुविधा, चौराघाट निर्माण, औद्योगिक क्षेत्र में देश के बड़े औद्योगिक संस्थानों द्वारा उद्योग स्थापना की स्वीकृति देने सहित अन्य विकास के कार्य तेजी से हो रहे हैं। यह जिला हर क्षेत्र में आने वाले समय में प्रदेश का सर्वोत्तम जिला बनेगा। कार्यक्रम को संबोधित करते हुए समाजसेवी डॉ राजेन्द्र मिश्र ने कहा कि मऊगंज जिले के विकास में उप मुख्यमंत्री जी का निरंतर सहयोग मिल रहा है। उनके मार्गदर्शन में यह जिला उन्नति की ऊंचाईयाँ छुएगा। कार्यक्रम में उप मुख्यमंत्री श्री शुक्ल को अभिनंदन पत्र भेंट किया गया। इससे पूर्व उप मुख्यमंत्री ने हनुमान मंदिर में भगवान के दर्शन किए तथा पूजा-अर्चना की। कार्यक्रम में कलेक्टर संजय कुमार जैन, पूर्व विधायक लक्ष्मण तिवारी, केशव प्रसाद मिश्र, संतोष मिश्र, नगर परिषद अध्यक्ष आशुतोष गुप्ता, जनपद अध्यक्ष नीलम सिंह, नईगढ़ी जनपद अध्यक्ष ममता तिवारी, रीवा जिला गौसंवर्धन बोर्ड के पूर्व उपाध्यक्ष राजेश पाण्डेय, एसडीएम बीपी पाण्डेय सहित बड़ी संख्या में हनुमनावासी उपस्थित रहे।

कलेक्टर ने किया कलेक्ट्रेट कार्यालय में ध्वजारोहण

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर कलेक्टर प्रतिभा पाल ने कलेक्ट्रेट कार्यालय में ध्वजारोहण किया। इसके बाद राष्ट्रगान का गायन किया गया। कलेक्टर ने कहा कि देश की आजादी के लिये कुर्बानी देने वाले शहीदों को याद करने का आज दिन है। कलेक्टर ने कहा कि सभी शासकीय अधिकारी व कर्मचारी संवेदनशील होकर अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक निर्वहन करें तथा शासन की योजनाओं व कार्यक्रमों को हर जरूरतमंद तक पहुंचायें। साथ ही स्वयं एवं अपने परिजनों के स्वास्थ्य का भी ध्यान रखें। इस अवसर पर अपर कलेक्टर सपना त्रिपाठी, सहायक कलेक्टर दृष्टि जायसवाल, एसडीएम हुजूर वैशाली जैन तथा कलेक्ट्रेट के अधिकारी-कर्मचारी उपस्थित रहे। कलेक्टर ने ध्वजारोहण के बाद जनअभियान परिषद द्वारा चलाये जा रहे मेरा तिरंगा मेरा शान अभियान में हस्ताक्षर किया।

जिला पंचायत में नीता कोल ने फहराया तिरंगा

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। देश का 79वां स्वतंत्रता दिवस समारोह जिला पंचायत समारोहपूर्वक मनाया गया। जिला पंचायत कार्यालय में अध्यक्ष जिला पंचायत नीता कोल ने तिरंगा फहराया। अध्यक्ष ने कहा कि हम सब देश की आजादी का मोल समझें और जिले तथा देश के विकास में योगदान दें। देश के शहीदों के बलिदान को सदैव याद रखें। इस अवसर पर जिला पंचायत के मुख्य कार्यपालन अधिकारी मेहताब सिंह गुर्जर तथा कार्यालय के अधिकारी और कर्मचारी उपस्थित रहे।

उप मुख्यमंत्री ने निर्माणाधीन जिला अस्पताल भवन मऊगंज का किया निरीक्षण

मीडिया ऑडीटर, मऊगंज (निप्र)। उप मुख्यमंत्री श्री राजेन्द्र शुक्ल ने कहा कि मऊगंज जिले के गठन के साथ ही इस जिले में विकास के द्वार खुल गए हैं। जिले में स्वास्थ्य सेवाओं को बेहतर बनाने के लिए सभी कार्य प्राथमिकता से कराए जा रहे हैं। 40 करोड़ रुपए की लागत से सुविधायुक्त 100 बिस्तरों का जिला चिकित्सालय भवन निर्माणाधीन है।

उप मुख्यमंत्री ने निर्माणाधीन भवन का निरीक्षण किया तथा पूर्ण गुणवत्ता के साथ निर्माण कराने के निर्देश दिए। उन्होंने कहा कि लेआउट देकर परिसर का सीमांकन कराते हुए सभी कार्य प्रारंभ कराएं तथा नियत समय सीमा में पूर्ण कराएं। उप मुख्यमंत्री ने कहा कि मऊगंज जिले के स्वास्थ्य केन्द्रों में चिकित्सकीय स्टाफ व उपकरण की कमी नहीं होगी। उन्होंने सीएमएचओ को निर्देश दिए कि प्रोएक्टिव होकर कार्य करें। जिले के स्वास्थ्य केन्द्रों का लगातार भ्रमण कर स्वास्थ्य केन्द्रों के संचालन की मॉनीटरिंग करें। श्री शुक्ल ने चिकित्सकों से कहा कि ओपीडी पर विशेष ध्यान दें। ग्रामीण स्तर की स्वास्थ्य सेवाएं बेहतर होने से मातृ मृत्यु दर व शिशु मृत्यु दर कम होगी तथा जिला स्तर पर व रीवा के अस्पतालों में मरीजों की भीड़ कम होगी। जिला स्वास्थ्य समिति की बैठक करने के निर्देश भी उप मुख्यमंत्री ने दिए। उन्होंने कहा कि जो भी आवश्यकताएं हों उन्हें बताएं ताकि तत्काल उनकी पूर्ति कराई जा सके। उन्होंने कहा कि एक माह बाद वह पुनः जिला अस्पताल भवन के निर्माण कार्य का निरीक्षण करेंगे।

जमीनी विवाद पर लाठी-डंडों से भिड़े दो पक्ष, काउंटर एफआईआर दर्ज

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। जिले के चाकघाट थाना क्षेत्र के पडरी गांव में जमीनी विवाद को लेकर शुक्रवार को दो पक्षों के बीच जमकर मारपीट हुई। दोनों ओर से लाठी-डंडे चले और महिलाओं ने भी हाथापाई में हिस्सा लिया। घटना का वीडियो शनिवार को सामने आया, जिसमें आधा दर्जन लोग एक-दूसरे को पीटते नजर आ रहे हैं।

पुरानी रंजिश में भड़का विवाद: ग्रामीणों ने बताया कि विवाद शुक्ला और मांझी परिवार के बीच हुआ। दोनों पक्ष पड़ोसी हैं और उनके बीच पुरानी रंजिश चल रही थी। इसी को लेकर शुक्रवार देर शाम बहस शुरू हुई जो देखते ही देखते मारपीट में बदल गई।

महिलाओं ने भी उठाई लाठियां: वीडियो में साफ दिख रहा है कि पुरुषों के साथ-साथ महिलाएं भी लाठी-डंडे लेकर मारपीट में शामिल थीं। एक समय तो दोनों ओर से जमकर लाठियां बरसीं। बाद में स्थानीय लोगों ने बीच-बचाव किया तो मामला किसी तरह शांत हो सका।

पुलिस ने दर्ज की काउंटर एफआईआर: चाकघाट थाना प्रभारी ने बताया कि विवाद करने वाले वेद प्रकाश मांझी और सुरेश शुक्ला समेत दोनों पक्षों के खिलाफ केस दर्ज किया गया है। पुलिस ने वायरल वीडियो को सबूत मानते हुए जांच शुरू कर दी है और आरोपियों की तलाश की जा रही है।

उपमुख्यमंत्री का गंगेव में भव्य स्वागत, 5 करोड़ 25 लाख की लागत से नवीन जनपद भवन का होगा लोकार्पण

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। मनगवां नि. प्र. विंध्य क्षेत्र के विकास पुरुष एवं मध्य प्रदेश शासन के उपमुख्यमंत्री राजेंद्र शुक्ला का जन्मोत्सव कार्यक्रम 17 अगस्त को जनपद पंचायत गंगेव में आयोजित किया जा रहा है। उक्त कार्यक्रम की सभी तैयारियां पूर्ण की जा चुकी है। कार्यक्रम के संयोजक मनगवा विधायक नरेंद्र प्रजापति एवं आयोजक जनपद पंचायत गंगेव अध्यक्ष विकास तिवारी ने बताया कि उपमुख्यमंत्री जी के 61 वे जन्मदिवस पर 61 जगह विशेष स्नेह पूर्वक स्वागत किया जाएगा। यह सिलसिला मनगवा विधानसभा के ग्राम बेलवा पैकन से शुरू होकर जनपद पंचायत गंगेव तक अनवरत चलेगा।

गंगेव जनपद की सभी 88 पंचायत के अलग-अलग पंडाल सरपंच एवं अन्य जन प्रतिनिधियों के द्वारा लगाए जा रहे हैं। कार्यक्रम में विकास तिवारी मित्र मंडल, सचिव एवं रोजगार सहायक संघ एवं अन्य संगठनों द्वारा उपमुख्यमंत्री राजेंद्र शुक्ल का सम्मान किया जाएगा। साथ ही 5 करोड़ 25 लाख की लागत से जनपद भवन का लोकार्पण भी किया जाएगा। साथ ही उन्होंने बताया कि भारत रत्न पूर्व प्रधानमंत्री स्व. अटल बिहारी वाजपेई जी की जन्म जयंती के अवसर पर जनपद पंचायत गंगेव के सभागार का नामकरण अटल बिहारी वाजपेई सभागार करने का रखने का निर्णय लिया गया है। कार्यक्रम के आयोजकों ने विधानसभा एवं जनपद पंचायत गंगेव के सभी जन प्रिय कार्यकर्ता एवं आमजन अपने चाहते नेता के जन्मदिवस पर अधिक से अधिक संख्या में पहुंचने की अपील की है।

जिले में हर्षोल्लास से मनाया गया स्वतंत्रता दिवस, आन-बान-शान से लहराया तिरंगा

समारोह में मुख्य अतिथि कलेक्टर ने ध्वजारोहण करके ली परेड की सलामी

मीडिया ऑडीटर, रीवा (निप्र)। देश का 79वां स्वतंत्रता दिवस रीवा जिले में हर्षोल्लास से मनाया गया। जिले में आन-बान-शान से तिरंगा लहराया गया। मुख्य समारोह एसएएफ पुलिस परेड मैदान में आयोजित किया गया। समारोह में मुख्य अतिथि कलेक्टर प्रतिभा पाल ने ध्वजारोहण करके परेड की सलामी ली। समारोह में मुख्यमंत्री जी के स्वतंत्रता दिवस संदेश का भोपाल से सजीव प्रसारण दिखाया गया। इसके बाद कलेक्टर ने जिले की उपलब्धियों और विकास कार्यों की जानकारी देते हुए आमजनता को स्वतंत्रता दिवस की बधाई दी। समारोह में सशस्त्र बलों ने हर्ष फायर करके राष्ट्रीय ध्वज का अभिवादन किया। समारोह में परेड कमाण्डर दिलीप तिवारी के नेतृत्व में विशेष शस्त्र बल, जिला पुलिस बल एवं सैनिक स्कूल के दल के सहित विभिन्न दलों ने बैण्ड की मधुर धुन पर आकर्षक परेड की। समारोह में इसके बाद मुख्य अतिथि ने तीन रंग के मनोहारी गुब्बारों को हर्ष स्वरूप मुक्त गगन में छोड़ा।

समारोह में मुख्य अतिथि ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों वीर शहीदो के परिजनों तथा लोकतंत्र के प्रहरियों का पुष्पगुच्छ, शाल एवं श्रीफल भेंटकर सम्मान किया। समारोह में तीन स्कूलों के विद्यार्थियों ने देश भक्ति से ओतप्रोत तथा शासन की विकास योजनाओं को प्रदर्शित करने वाले गीतों और नृत्यों के साथ मनोहारी सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इसके बाद मुख्य अतिथि ने विभिन्न क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वालों को प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया। मुख्य समारोह के साथ-साथ सभी विकासखण्ड मुख्यालयों, नगरीय निकायों, ग्राम पंचायतों, शासकीय एवं अशासकीय शिक्षण संस्थानों एवं कार्यालयों में भी स्वतंत्रता दिवस समारोह पूर्वक मनाया गया।

मऊगंज में प्रभारी मंत्री ने समारोह में किया ध्वजारोहण

मीडिया ऑडीटर, मऊगंज (निप्र)। जिले में स्वतंत्रता दिवस समारोह कलेक्ट्रेट परिसर में आयोजित किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि जिले के प्रभारी मंत्री श्री लखन पटेल राज्य मंत्री स्वतंत्रत प्रभार पशुपालन एवं डेयरी विकास ने ध्वजारोहण कर परेड की सलामी ली। समारोह को लेकर आमजनों में उल्लास और उत्साह का वातावरण रहा। समारोह में सुरक्षा बलों ने हर्ष फायर करके राष्ट्रीय ध्वज का अभिवादन किया। समारोह में विशेष सशस्त्र बल तथा जिला पुलिस बल ने सम्मिलित रूप से बैण्ड की मधुर धुन पर आकर्षक परेड की। भोपाल से मुख्यमंत्री जी के स्वतंत्रता संदेश वाचन का सजीव प्रसारित किया गया। मुख्य अतिथि श्री लखन पटेल ने अपने उद्बोधन में मऊगंज जिले की प्रगति तथा उपलब्धियों का उल्लेख करते हुए बधाई संदेश का वाचन किया। इस अवसर पर मुख्य अतिथि ने तीन रंग के मनोहारी गुब्बारों को हर्ष स्वरूप मुक्त गगन में छोड़ा। समारोह में मध्यप्रदेश गान प्रस्तुत किया गया।

समारोह में मुख्य अतिथि ने स्वतंत्रता संग्राम सेनानियों वीर शहीदो के परिजनों तथा लोकतंत्र के प्रहरियों का शाल एवं श्रीफल भेंटकर सम्मान किया। समारोह में विभिन्न स्कूलों के विद्यार्थियों ने देश भक्ति से ओतप्रोत तथा शासन की विकास योजनाओं को प्रदर्शित करने वाले गीतों और नृत्यों के साथ मनोहारी सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये। इसके बाद मुख्य अतिथि ने विभिन्न क्षेत्र में उत्कृष्ट कार्य करने वालों को प्रशस्ति पत्र देकर सम्मानित किया। मुख्य समारोह के साथ-साथ सभी विकासखण्ड मुख्यालयों, नगरीय निकायों, ग्राम पंचायतों, शासकीय एवं अशासकीय शिक्षण संस्थानों एवं कार्यालयों में भी स्वतंत्रता दिवस समारोह पूर्वक मनाया गया।

स्वत्वाधिकारी मुद्रक/प्रकाशक संदीप द्विवेदी द्वारा मीडिया ऑडीटर पब्लिकेशन प्रा.लिमि. राजीव मार्ग निराला नगर रीवा से मुद्रित कर मीडिया ऑडीटर कार्यालय राजीव मार्ग निराला नगर रीवा से प्रकाशित, **संपादक संदीप द्विवेदी**, आर.एन.आई नं. 69082/97, डाक पंजीयन क्र.- म. प्र./ रीवा संभाग/ 46/2023-2025, प्रधान कार्यालय रीवा (सिटी कार्यालय चक्रधर सिटी सेंटर रीवा) फोन. नं. 9589645803, 7974467831 Mediaauditor1@gmail.com सभी विवादों का न्याय क्षेत्र रीवा होगा।